बल नहीं मिला। परीक्षण के आठ मिनट पूर्व (टी-8) की पहली कमांड के बाद संदूषण के कारण ऑक्सीडाइजर टैंक का एक वाल्व खुला रह गया और उससे नाइट्रिक एसिड निकल गया।

ये नतीजे इसरो के शीर्ष वैज्ञानिकों की बैठक में प्रो. धवन के समक्ष रखे गए और इन्हें स्वीकार किया गया। हर कोई इस मिशन की असफलता के इन तकनीकी कारणों से सहमत था और पूरे मामले में सभी का संतोष इस बात का था कि असफलता से बचने के लिए कदम उठाए गए थे। हालाँकि मैं अभी भी इन कारणों को लेकर संतुष्ट नहीं था और बेचैनी महसूस कर रहा था। मेरे मामले में जिम्मेदारी का स्तर इस बात से तय किया जाता कि मैं बिना किसी देरी या इधर-उधर ध्यान दिए बिना निर्णय लेने की प्रक्रिया की योग्यता रखता हूँ। मैं खड़ा हुआ और प्रो. धवन से बोला, 'सर, हालाँकि इस असफलता के लिए मेरे साथियों ने तकनीकी गड़बड़ी को दोषी ठहराया है, तो भी अंतिम चरण की उलटी गिनती के दौरान नाइट्रिक एसिड रिसाव को अनदेखा करने की जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ। एक मिशन डायरेक्टर के रूप में मुझे प्रक्षेपण रोक देना चाहिए था और संभव था तो उड़ान को सुरक्षित बचा लेने का प्रयत्न करना था। अन्य देशों में ऐसी स्थिति में मिशन डायरेक्टर को अपने काम से हाथ धोना पड़ जाता है। इसलिए एस.एल.वी.-3 की असफलता का जिम्मा मैं अपने ऊपर लेता हूँ।' थोड़े समय के लिए पूरे हॉल में सन्नाटा छा गया। प्रो. धवन खड़े हुए और बोले, 'मुझे कलाम को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित करके ही छोड़ना है।' यह कहते हुए वह उठे और बैठक खत्म करने का संकेत देते हुए बाहर चले गए। विज्ञान के लक्ष्य हमें बड़ी खुशी तो देते ही हैं, साथ ही दुःख, तकलीफ एवं हृदय-विदारक क्षण भी हमारे सामने आते हैं। मेरे मस्तिष्क में ऐसी कई घटनाएँ दर्ज हैं। जॉन केपलर, जिसके तीन कक्षीय गति नियम अंतरिक्ष शोध का मूल आधार बने, को सूर्य के चारों ओर ग्रहों की गति के बारे में दो नियम बनाने के बाद तीसरा नियम प्रतिपादित करने में करीब सत्रह साल लग गए थे। ग्रहों की गति का यह तीसरा नियम दीर्घ वृत्ताकार कक्षा के आकार एवं ग्रह को सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने में लगनेवाले समय के बीच संबंध स्थापित करने को लेकर था। इस दौरान उसे न जाने कितनी बार असफलताओं और निराशा का सामना करना पड़ा होगा। मानव का चंद्रमा पर कदम रखने का विचार सर्वप्रथम रूस के गणितज्ञ कोंस्तेतिन तिस्लोकोस्की ने दिया था, जो कि चार दशक बाद साकार हो पाया और वह भी अमेरिकनों के हाथों। प्रो. चंद्रशेखर को अपनी खोज 'चंद्रशेखर लिमिट' के बाद नोबल पुरस्कार के लिए पचास साल

इंतजार करना पड़ा। सन् 1930 के दशक में कैंब्रिज विश्वविद्यालय से जब उन्होंने स्नातक किया था, तभी यह खोज कर ली थी। अगर उसी समय उनकी खोज को मान्यता दे दी जाती तो 'ब्लैक होल' की खोज कई दशक पहले हो सामने आ जाती। चंद्रमा पर पहला यान उतारने के लिए रॉकेट बनाने के पहले फॉन ब्रॉन को कितनी ही असफलताओं का सामना करना पड़ा था। झटकों से उबरने के लिए मुझे इन सब विचारों ने काफी मदद की।

नवंबर 1979 के शुरू में डॉ. ब्रह्मप्रकाश रिटायर हो गए। वी.एस.एस.सी. में संकट के वक्त में वे हमेशा मेरे रक्षक, हितैषी बने रहे। टीम भावना से काम करने की शक्ति में उनका जो विश्वास था, उससे एस.एल.वी. परियोजना के प्रबंधन में एक प्रेरणा मिली थी, जो बाद में देश की सभी वैज्ञानिक परियोजनाओं के लिए भी प्रेरणा का स्रोत और मूल ढाँचा बनी। डॉ. ब्रह्मप्रकाश एक बहुत ही बुद्धिमान परामर्शदाता थे, जिन्होंने मुझे अपने मिशन के लक्ष्य के बारे में जब-जब जरूरत पड़ी, अमूल्य मार्गदर्शन दिया।

डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने मुझमें न सिर्फ विशेषताओं को ही निखारा, जो मैंने प्रो. साराभाई से प्राप्त की थीं, बल्कि उन विशेषताओं को नया आयाम देने में मेरी मदद भी की। जल्दबाजी को लेकर वे मुझे हमेशा सावधान करते रहते थे। वह मुझसे कहा करते—'बड़ी वैज्ञानिक परियोजनाएँ उन पहाड़ों के समान हैं जिसपर थोड़ी-थोड़ी कोशिशों, जो संभव हो सकें, तथा बिना इच्छा के चढ़ा जाना चाहिए। तुम्हारी स्वयं की प्रकृति को ही वास्तविक गति का पता लगाना चाहिए। अगर तुम अनवरत चल रहे हो, गति और बढ़ेगी। अगर तुम तनावग्रस्त और बहुत ही उत्तेजित हो, धीरे हो जाओगे। तुम पहाड़ पर उस साम्यावस्था में चढ़ो जिसमें न थकान हो, न बेचैनी हो।' जब तुम्हारी परियोजना का हर काम ठीक तरह से न सिर्फ पूरा हो जाए बल्कि अपने में एक असाधारण घटना बन जाए, तभी तुम उसे दिखाने का काम करो। अपने जीवन में मैंने पहली बार डॉ. ब्रह्मप्रकाश को एक आदर्श प्रबंधक के रूप में देखा था। डॉ. ब्रह्मप्रकाश की इस सलाह की गूँज इमर्सन की इस कविता में प्रतिध्वनित होती है, जो ब्रह्मा पर लिखी गई है—

'कातिल सोचे उसने मारा
या मकतूल कहे वह गुजरा
दोनों ही अनजान
ना जानें
मैं बनाऊँ, पालूँ और मारूँ।'

हर स्तर पर एस.एल.वी.-3 टीम को कुछ असाधारण एवं उत्साही लोगों का साथ और सहयोग मिलता रहा। सुधाकर और शिवरामकृष्णन के साथ एक साथी शिवकामीनाथन भी थे। वे त्रिवेंद्रम से श्रीहरिकोटा एक सी बैंड ट्रांसपोंडर लेकर आए थे, जिसे एस.एल.वी.-3 में लगाया जाना था। ट्रांसपोंडर रॉकेट प्रणाली में लगाया जानेवाला वह यंत्र है जो कि राडार संकेत देता है, जिनसे यान को उड़ान की शुरुआत से लेकर अपने अंतिम स्थान तक पहुँचने के लिए रास्ता निर्धारित करने में मदद मिलती है। एस.एल.वी.-3 के प्रक्षेपण काम इस उपकरण (ट्रांसपोंडर) के आने और रॉकेट में लगाने पर निर्भर था। मद्रास हवाई अड्डे पर उतरते वक्त विमान, जिसमें शिवकामी यात्रा कर रहे थे, फिसल गया और रन वे को लाँघता हुआ आगे निकल गया। विमान में से तेज धुआँ उठा। शिवकामी के अलावा हर व्यक्ति विमान के आपातकालीन द्वार से बाहर कूद रहा था और अपने को बचाने के लिए संघर्ष कर रहा था। शिवकामी विमान में तब तक रुके रहे जब तक कि उन्होंने सामान में से ट्रांसपोंडर नहीं निकाल लिया। वह विमान में रहे कुछ ही लोगों में से थे जो धुएँ में घिरे रहे और उन्होंने ट्रांसपोंडर को अपने सीने से लगाए रखा।

उन्हीं दिनों की एक और घटना मुझे याद आती है जब एस.एल.वी.-3 के निर्माण के वक्त प्रो. धवन दौरे पर आए थे। प्रो. धवन, माधवन नायर और मैं एस.एल.वी.-3 के संयोजन से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर विचार-विमर्श कर रहे थे। यान एक प्रक्षेपक (लॉन्चर) पर क्षैतिज स्थिति में रखा हुआ था। जब हम इस यान के चारों ओर घूम-घूमकर उसकी तैयारी की जाँच कर रहे थे तभी मेरी नजर आग बुझाने के लिए काम आनेवाले पानी के बड़े तोरणों (वाटर पोर्ट्स) पर पड़ी। कुछ कारणों से मुझे इन जल तोरणों का एस.एल.वी.-3 के सामने की ओर होना ठीक नहीं लगा। मैंने माधवन नायर को सुझाव दिया कि हम इस जल तोरण को इस प्रकार घुमा सकें कि यह पूरा 180° घूम जाए। इससे पानी की धार सीधे रॉकेट पर पड़ने की संभावना काफी कम रह जाएगी, जो कि पूरे रॉकेट को नष्ट कर सकती है। माधवन नायर इन जल तोरणों को सुरक्षित कर ही पाए थे कि अचानक तेज पानी की धार इन जल तोरणों से निकल पड़ी। पानी छोड़ने के परिणाम से अनभिज्ञ यान का सुरक्षा अधिकारी अग्निशमन प्रणाली की जाँच कर रहा था। लेकिन उसे जरा भी इस बात का ज्ञान नहीं था कि इस तेज धार से पूरे रॉकेट को नुकसान पहुँच सकता है। यह एक दूरदृष्टि का सबक था या फिर किसी दैवी शक्ति ने बचाया?

दूसरे एस.एल.वी.-3 के प्रक्षेपण के तीस घंटे पहले, यानी 17 जुलाई, 1980

को सारे अखबार हर तरह की भविष्यवाणियों से भरे पड़े थे। एक अखबार ने लिखा था—'परियोजना निदेशक का कुछ पता नहीं चल रहा है और उनसे कोई संपर्क नहीं हो सका है।' कई लोगों ने पहले एस.एल.वी.-3 की उड़ान का इतिहास ढूँढ़ने को प्राथमिकता दी और बताया कि किस प्रकार ईंधन की कमी के कारण रॉकेट के तीसरे चरण ने काम करना बंद कर दिया था और रॉकेट समुद्र में जा गिरा तथा पूरा मिशन असफल रहा। कुछ अखबारों ने छापा कि एस.एल.वी.-3 के संभावित सैन्य अनुप्रयोग क्या हो सकते हैं, जिसमें कि हम मध्यम दूरी तक मार कर सकनेवाली मिसाइलें 'आई.आर.बी.एम.' बना सकने की क्षमता हासिल कर सकते हैं। कुछ अखबारों ने ऐसे सामान्य पूर्वानुमान व्यक्त किए जो देश को कष्ट पहुँचानेवाले थे और एस.एल.वी.-3 से संबंधित थे। मुझे मालूम था कि अगले दिन का प्रक्षेपण देश के अंतरिक्ष कार्यक्रम का भविष्य तय करने जा रहा है। या तो अब या कभी नहीं। वास्तव में पूरे देश की निगाहें हमपर टिकी हुई थीं।

अगले दिन यानी 18 जुलाई, 1980 को सुबह आठ बजकर तीन मिनट पर श्रीहरिकोटा रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र से एस.एल.वी.-3 ने उड़ान भरी। छह सौवें सेकंड पर मैंने देखा कि रोहिणी उपग्रह को कक्षा में प्रवेश कराने के लिए चौथे चरण के इंजन से मिलनेवाले जरूरी वेग के बारे में कंप्यूटर पर आँकड़े आ रहे हैं। अगले दो मिनट में रोहिणी पृथ्वी की निचली कक्षा में स्थापित हो गया था। मैंने कर्कश आवाज में चिल्लाते हुए जो महत्त्वपूर्ण शब्द उस समय कहे, शायद ही जीवन में कभी कहे होंगे—'मिशन डायरेक्टर की सभी स्टेशनों को सूचना है। महत्त्वपूर्ण घोषणा के लिए तैयार रहें। सभी चरणों ने मिशन की जरूरतें पूरी कर ली हैं। चौथे चरण के इंजन ने रोहिणी उपग्रह को कक्षा में प्रवेश कराने के लिए आवश्यक वेग दे दिया है।'

हर जगह लोग खुशी से चिल्ला उठे थे। जैसे ही मैं ब्लॉक हाउस के बाहर आया, मेरे साथियों ने मुझे कंधे पर उठा लिया और मेरा जुलूस निकाला।

सारा देश खुशी से रोमांचित था। भारत अब दुनिया के उन चुनिंदा देशों की पंक्ति में शामिल हो गया था जिनके पास उपग्रह प्रक्षेपण की क्षमता थी। सारे अखबारों में यह खबर सुर्खियों में थी। रेडियो व दूरदर्शन ने विशेष कार्यक्रम प्रसारित किए थे। संसद् में मेजें थपथपाकर बधाई दी गई। यह राष्ट्र के एक सपने के साथ ही देश के इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण अध्याय की भी शुरुआत थी। अपनी सहज विनम्रता त्याग इसरो के अध्यक्ष प्रो. सतीश धवन ने बाजोश ऐलान किया कि अब हम अंतरिक्ष में खोज की पूरी योग्यता से युक्त हो गए हैं। तत्कालीन प्रधानमंत्री

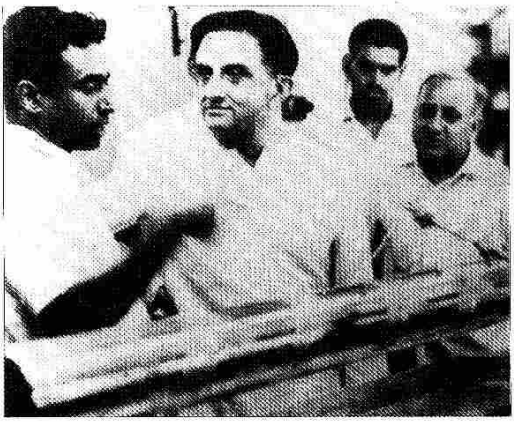

प्रो. विक्रम साराभाई के साथ — थुंबा में।

प्रो. सतीश धवन और, मैं तत्कालीन प्रधानमत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को एस.एल.वी.-3 के परिणामों की जानकारी देते हुए।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान के दो गुरुओं — प्रो. सतीश धवन एवं डॉ. ब्रह्मप्रकाश के साथ एस.एल.वी.-3 की समीक्षा बैठक में।

मेरी एस.एल.वी.-3 टीम के एक सदस्य द्वारा एक प्रस्तुति।

एस.एल.वी.-3 के समाकलन के अंतिम चरण का निरीक्षण करते हुए डॉ. ब्रह्मप्रकाश।

'अग्नि' के सफल प्रक्षेपण के बाद आनंदित व उत्साहित जनसमूह ने कंधों पर उठा लिया।

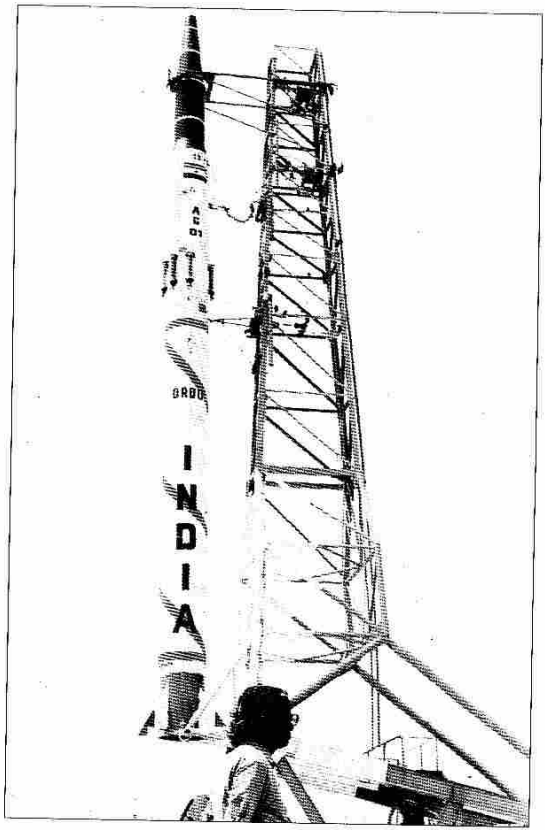

लॉञ्च पैड पर अग्नि।

राष्ट्रपति डॉ. नीलम संजीव रेड्डी से 'पद्म भूषण' ग्रहण करते हुए।

राष्ट्रपति डॉ. के. आर. नारायणन द्वारा 'भारत रत्न' ग्रहण करते हुए।

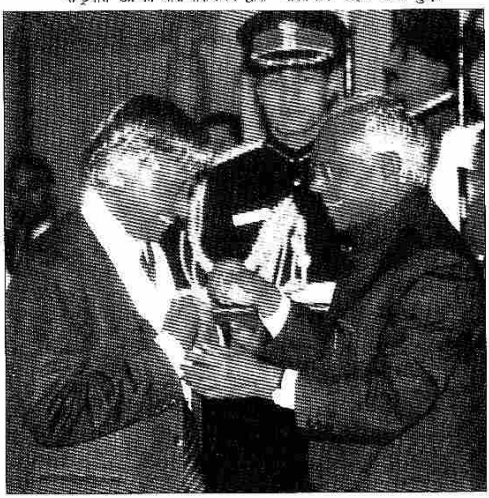

लॉन्च पैड पर एस.एल.वी.-3 ।

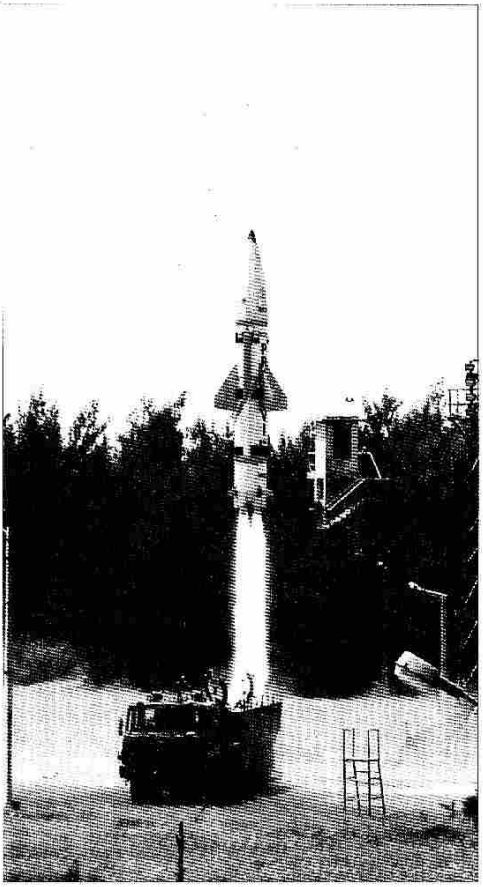

'पृथ्वी' का सफल प्रक्षेपण।

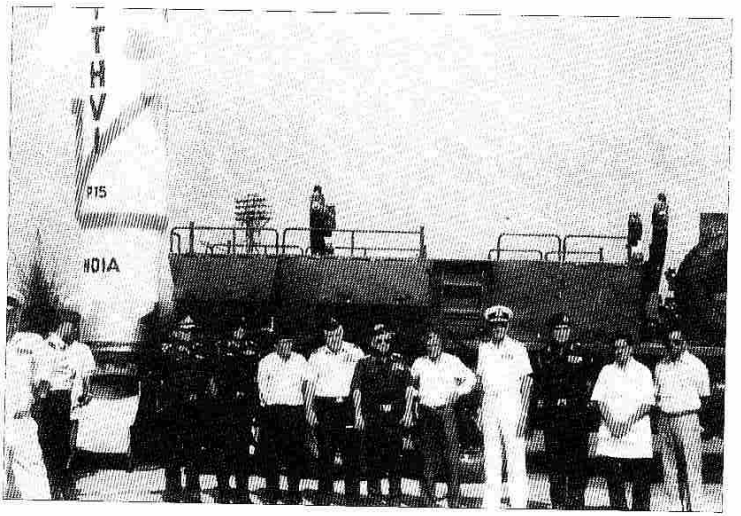

तीनों सेनाध्यक्षों के साथ।

इंदिरा गांधी ने भी फोन पर बधाई दी। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रिया उस भारतीय वैज्ञानिक समुदाय की थी जिसमें हर कोई रोमांचित था और शत-प्रतिशत स्वदेशी प्रयास पर गर्व कर रहा था।

मेरे भीतर मिली-जुली प्रतिक्रिया हो रही थी। इस सफलता को हासिल करके मैं काफी खुश था, क्योंकि पिछले दो दशकों में पहली बार पूर्ण सफलता मिली थी। लेकिन दु:खी इसलिए था, क्योंकि मुझे प्रेरणा देते रहनेवाले, मेरी खुशी में हिस्सा बँटानेवाले अब इस दुनिया में नहीं थे—मेरे पिता, मेरे बहनोई जलालुद्दीन और प्रो. साराभाई।

एस.एल.वी.-3 उड़ान को सफल बनाने का सबसे पहला श्रेय अंतरिक्ष कार्यक्रम के पितामह प्रो. विक्रम साराभाई को जाता है, जिन्होंने इसके लिए कोशिशें शुरू की थीं, साथ ही वी.एस.एस.सी. के उन सैकड़ों साथियों को भी, जिनकी इच्छाशक्ति ने इस सफलता को साकार कर दिखाया और साथ ही प्रो. धवन एवं डॉ. ब्रह्मप्रकाश को, जिन्होंने इस परियोजना का नेतृत्व किया।

उस दिन हमने एक रात्रिभोज का आयोजन किया था। धीरे-धीरे आयोजन का शोरगुल धीमा पड़ता गया। मैं अपने कमरे में सोने चला गया। जरा भी ऊर्जा नहीं रह गई थी। कमरे की खुली खिड़की से बादलों के बीच चाँद को देखता रहा।

एस.एल.वी.-3 की सफलता के महीने भर के भीतर ही मैं एक निमंत्रण पर बंबई के नेहरू विज्ञान केंद्र में गया। वहाँ मुझे एस.एल.वी.-3 से जुड़े अपने अनुभवों पर बोलना था। वहीं मेरे पास दिल्ली से प्रो. धवन का फोन आया। उन्होंने अगली सुबह ही मुझे दिल्ली में अपने पास पहुँचने को कहा। हमें प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से मिलना था। नेहरू विज्ञान केंद्र के मेरे मेजबान ने मेरे दिल्ली जाने के टिकट का तो इंतजाम करा दिया था, लेकिन मेरे साथ एक छोटी समस्या और भी थी। यह समस्या मेरे कपड़ों को लेकर थी। मैं रोजाना की तरह ही सादा कपड़ों और हवाई चप्पलों में था, जिनका कि मैं आज तक भी आदी हूँ। प्रधानमंत्री से मिलने जाने के लिए कम-से-कम एक स्तरीय कपड़े तो पहनने जरूरी थे। मैंने प्रो. धवन को इस समस्या के बारे में बताया तो उन्होंने मुझसे कहा कि कपड़ों के बारे में तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं है। वह बोले, 'तुम तो अपनी सफलता से सजे हो।'

अगली सुबह प्रो. धवन और मैं संसद् भवन की एनेक्सी में पहुँचे। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के संसदीय पैनल की बैठक होनी थी। कमरे में लोकसभा एवं राज्यसभा के लगभग तीस सदस्य थे। प्रो. एम.जी.के. मेनन और डॉ. नाग चौधरी भी यहाँ उपस्थित थे। श्रीमती इंदिरा गांधी ने सदस्यों को

एस.एल.वी.-3 की सफलता के बारे में बताया और हमारी उपलब्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा की। प्रो. धवन ने उपस्थित सदस्यों को देश के अंतरिक्ष कार्यक्रम के क्षेत्र में उत्साह बढ़ाने के लिए धन्यवाद दिया और इसरो के वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों के प्रति अपना आभार व्यक्त किया। अचानक मैंने देखा कि श्रीमती गांधी मेरी ओर मुसकराती हुई बोलीं, 'कलाम! हम तुम्हें यहाँ सुनना पसंद करेंगे।' प्रो. धवन पहले बोल ही चुके थे। प्रधानमंत्री की ओर से ऐसे अनुरोध की मुझे तो कल्पना तक नहीं थी।

हिचकिचाते हुए मैं उठा और बोला, 'राष्ट्र निर्माताओं की उपस्थिति के बीच मैं अपने को वाकई सम्मानित महसूस कर रहा हूँ। मैं तो सिर्फ यही जानता हूँ कि हम देश में एक रॉकेट प्रणाली किस तरह तैयार कर सकते हैं, जिसे पच्चीस हजार किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से छोड़ा जा सके।' कमरा तालियों की आवाज से गूँज उठा। एस.एल.वी.-3 जैसी परियोजना पर काम करने और देश की वैज्ञानिक ताकत साबित करने का अवसर देने के लिए मैंने सदस्यों को धन्यवाद दिया। पूरे कमरे में खुशी की लहर दौड़ रही थी।

एस.एल.वी.-3 परियोजना सफलतापूर्वक पूरी हो जाने के बाद वी.एस.एस.सी. के संसाधनों को पुनर्गठित किया जाना था और इसके लक्ष्यों को भी फिर से परिभाषित किया जाना था। मैंने इस परियोजना से अवकाश लेने की इच्छा व्यक्त की। इसके बाद मेरी टीम के ही सदस्य वेंद प्रकाश संडलास एस.एल.वी.-3 परियोजना के निदेशक बने। इस परियोजना का अगला लक्ष्य इसी श्रेणी का परिचालन उपग्रह प्रक्षेपण यान (ऑपरेशनल सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल) तैयार करना था। एस.एल.वी.-3 को तकनीकी दृष्टि से और विकसित करके ऑगमेंटेड सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल्स (ए.एस.एल.वी.) करने का काम कुछ समय से चल रहा था। इसका उद्देश्य एस.एल.वी.-3 की पेलोड क्षमता (ले जानेवाले भार की क्षमता) चालीस किलो से बढ़ाकर डेढ़ सौ किलो करना था। मेरी टीम के एम.एस.आर. देव को ए.एस.एल.वी. परियोजना का निदेशक नियुक्त किया गया। इसके बाद नौ सौ किलोमीटर ऊँची कक्षा में पहुँचने के लिए पी.एस.एल.वी. बनाया जाना था। जियो सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (जी.एस.एल.वी.) पर भी विचार चल रहा था। मैंने एयरो स्पेस डायनेमिक्स एवं डिजाइन ग्रुप के निदेशक का काम सँभाला, ताकि भविष्य के प्रक्षेपण यानों के डिजाइन तैयार कर सकूँ और उनके तकनीकी विकास पर काम हो सके।

भविष्य की प्रक्षेपण यान प्रणालियों के आकार व भार के मद्देनजर तथा

परियोजनाओं पर काम करने के लिए आवश्यक उच्च विशेष तकनीक की सुविधाएँ वी.एस.एस.सी. के मौजूदा ढाँचे में नहीं थीं। वी.एस.एस.सी. की गतिविधियों के विस्तार के लिए नई जगहें तलाशी गईं—वत्तीयूरकाबू और वालियामाला। डॉ. श्रीनिवासन ने सुविधाओं के बारे में विस्तृत योजना तैयार की। जबकि मैंने शिवाथानु पिल्लै के साथ मिलकर एस.एल.वी.-3 के उपयोग का विश्लेषण तैयार किया और मिसाइलों के उपयोग के लिए प्रक्षेपण यानों का दुनिया के मौजूदा प्रक्षेपण यानों से तुलनात्मक अध्ययन किया। हमने यह स्थापित किया कि एस.एल.वी.-3 रॉकेट प्रणाली चार हजार किलोमीटर तक के दायरे में उपग्रहों को कक्षा में छोड़ने की देश की जरूरत पूरी कर सकती है। हमने दावा किया कि एस.एल.वी.-3 उपप्रणालियों के साथ 1.8 मीटर व्यास और छत्तीस टन ईंधन का अतिरिक्त बूस्टर भी विकसित किया जा सकता है, जो पाँच हजार किलोमीटर से ज्यादा जानेवाले तथा एक हजार किलोग्राम भार के पेलोड ले जाने की क्षमता से युक्त होगा और अंतरमहाद्वीपीय बैलेस्टिक मिसाइल (आई.सी.बी.एम.) की जरूरत पूरी कर सकेगा। इस प्रस्ताव पर हालाँकि कभी विचार नहीं हुआ। फिर भी इससे रि-एंट्री एक्सपेरिमेंट (रैक्स) का सूत्रपात हुआ, जो आगे चलकर 'अग्नि' के रूप में सामने आया।

एस.एल.वी.-3 की अगली उड़ान एस.एल.वी.-3 डी 1—31 मई, 1981 को हुई। दर्शक दीर्घा से मैंने इस उड़ान को देखा था। यह पहला अवसर था जब मैं नियंत्रण कक्ष के बाहर से यान का प्रक्षेपण देख रहा था।

क्या नए वातावरण के ठंडेपन से मुझे आघात लगा था? शायद हाँ, लेकिन मुझे, जो बदल नहीं पाया, उसे स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं थी।

मैंने कभी भी दूसरों की बुद्धि का फायदा नहीं उठाया। मेरा जीवन, जैसाकि मेरा स्वभाव बताता है, कभी भी उपलब्धि हासिल करनेवाले बेरहम व्यक्ति, बुद्धिहीन एवं क्रूर अफसर या शोषण करनेवाले या कल्पनाओं में उड़नेवाले व्यक्ति जैसा नहीं रहा; बल्कि एक ऐसे इनसान का रहा, जो विचारवान् हो। एस.एल.वी.-3 दबावों और जोड़तोड़ से नहीं बना था बल्कि यह एक सामूहिक प्रयास का परिणाम था। तब यह अप्रसन्नता का भाव क्यों? क्या यह वी.एस.एस.सी. के शीर्ष स्तर का प्रयास था या एक सार्वभौम सच्चाई? एक वैज्ञानिक के नाते मैं वास्तविकता के कारणों का पता लगाने के लिए प्रशिक्षित किया गया था। विज्ञान में वास्तविकता वह होती है जिसका अस्तित्व होता है और वास्तविकता यह कि मैं मीडिया के केंद्र में आ गया था और इस वजह से मेरे वरिष्ठ साथियों के बीच ईर्ष्या का पात्र बन गया था। यह जलन एक कटु वास्तविकता थी, जिसके कारणों को मुझे दूर करना

था। लेकिन क्या इनको दूर किया जा सकता है?

क्या एस.एल.वी.-3 की उड़ान के बाद के मेरे अनुभव मुझे गंभीर संकट में डाल रहे थे? हाँ और ना। हाँ, क्योंकि एस.एल.वी.-3 की सफलता का हक उस हर व्यक्ति को नहीं मिल पाया था जो इसका हकदार था बल्कि जिन लोगों ने थोड़ा-बहुत कुछ किया था। 'ना' इसलिए, क्योंकि किसी भी व्यक्ति के लिए परिस्थितियाँ सिर्फ तभी गंभीर बनती हैं जब आंतरिक आवश्यकता असंभव बनती महसूस होती है। और वह निश्चित ही यह मामला नहीं थी। दरअसल, द्वंद्व की अवधारणा इस बुनियादी विचार पर ही बनती है। सिंहावलोकन में मैं सिर्फ यही कह सकता हूँ कि मुझे अपने कार्यान्वयन एवं नवीनीकरण की जरूरत के बारे पूरी तरह पता था।

जनवरी 1981 में हाई एल्टीच्यूड लेबोरेटरी, जो अब डिफेंस इलेक्ट्रॉनिक्स एप्लीकेशन लेबोरेटरी (डी.ई.ए.एल.) है, में देहरादून के डॉ. भागीरथ राव ने मुझे एस.एल.वी.-3 पर व्याख्यान देने के लिए बुलाया। मशहूर नाभिकीय वैज्ञानिक प्रो. राजा रामन्ना, जिनका मैं हमेशा प्रशंसक रहा और जो उस समय रक्षामंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार थे, ने उस समारोह की अध्यक्षता की। वे भारत के नाभिकीय ऊर्जा पैदा करने की कोशिशों और शांतिपूर्ण कार्यों के लिए किए गए पहले परमाणु परीक्षण पर बोले। क्योंकि मैं एस.एल.वी.-3 से बहुत ही करीब से जुड़ा हुआ था, इसलिए स्वाभाविक था कि इस बारे में बात करते वक्त मैं पूरी तरह प्रवाह में था। समारोह के बाद प्रो. राजा रामन्ना ने मुझे चाय पर निजी बातचीत के लिए बुलाया।

प्रो. रामन्ना के प्रति मुझमें श्रद्धा हमेशा से ही थी और अब मुझे उन्हें निकट से देखने का अवसर मिला था। पहली चीज जिसने मुझे प्रभावित किया, वह यह थी कि जब मैं प्रो. रामन्ना से मिला तो बातचीत के दौरान मुझे एक विशुद्ध सच्ची खुशी का आभास हुआ। उनकी बातचीत में एक उत्सुकता थी, एक बहुत ही शालीन व दोस्ताना व्यवहार था। शाम को मुझे प्रो. साराभाई से पहली मुलाकात की यादें ताजा हो आईं; जैसे समय एवं काल में कोई दूरी नहीं रह गई हो। प्रो. साराभाई के भीतर की दुनिया बहुत ही सादा थी और बाहरी दुनिया बहुत ही आसान। उनके साथ काम करनेवाला हममें से हरेक व्यक्ति सृजन के लिए एकचित्त होकर काम करता और उन परिस्थितियों में रहता जो लक्ष्य के लिए जरूरी तौर पर उपलब्ध होतीं। प्रो. साराभाई की दुनिया में हमारे वे सपने बिलकुल खरे उतरते। हममें से हरेक के लिए यह न तो बहुत ही ज्यादा था और न ही बहुत कम। हम इसे अपनी जरूरतों के हिसाब से बाँट लेते थे।

अब मेरे भीतर की दुनिया बहुत सादी या आसान नहीं रह गई थी। भीतर से यह जितनी जटिल हो चुकी थी बाहर से उतनी ही मुश्किल भरी थी। रॉकेट विज्ञान में मेरी कोशिशों और स्वदेशी रॉकेट निर्माण का लक्ष्य हासिल करने में जहाँ बाहरी दिक्कतें बाधा बनीं वहीं भीतर की लड़खड़ाहट से जटिलता भी आई। मुझे पता था कि अपने रास्ते पर चलते रहने के लिए मुझे विशेष कोशिशों की जरूरत है। मेरे भूत के साथ वर्तमान का तालमेल पहले ही से जोखिम में पड़ चुका था। वर्तमान का भविष्य के साथ क्या तालमेल होगा, यह मैं दिमाग में पहले ही स्पष्ट कर चुका था, जब मैं प्रो. रामन्ना के पास चाय पर गया था।

मुख्य बिंदु पर आने में उन्होंने बहुत ज्यादा समय नहीं लगाया। डी.आर.डी.एल. में नारायणन और उसकी टीम की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद मिसाइल कार्यक्रम ठप पड़ा हुआ था। सैन्य रॉकेटों के सारे कार्यक्रम में जड़ता आ गई थी और निष्क्रियता बनी हुई थी। डी.आर.डी.ओ. में किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो मिसाइल कार्यक्रम का नेतृत्व कर सके। मिसाइल डिजाइन से लेकर परीक्षण तक का सारा काम बंद पड़ा था। प्रो. रामन्ना ने मुझसे साफ-साफ पूछा कि क्या मैं डी.आर.डी.एल. में जाना पसंद करूँगा और निर्देशित मिसाइल विकास कार्यक्रम (जी.एम.डी.पी.) को आकार देने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेना चाहूँगा। प्रो. रामन्ना के इस प्रस्ताव ने मेरे भीतर भावनाएँ जगा दी थीं। मुझे रॉकेट विज्ञान के अपने ज्ञान को सामने रखने और उसके प्रयोग का फिर दोबारा ऐसा मौका कब मिलेगा?

प्रो. रामन्ना के मन में मेरे लिए जो श्रद्धा थी, उससे मैं अपने को सम्मानित महसूस कर रहा था। पोखरण परमाणु परीक्षण के पीछे वह ही मार्गदर्शक प्रेरणा स्रोत थे। मैं इससे काफी रोमांचित था कि प्रो. रामन्ना ने भारत की तकनीकी क्षमता को दुनिया को बताने में मदद की थी। मुझे पता था कि मैं उन्हें मना नहीं कर पाऊँगा। प्रो. रामन्ना ने मुझे इस बारे में प्रो. धवन से बात करने की सलाह दी, ताकि वे इसरो से डी.आर.डी.एल. में मेरे तबादले की रूपरेखा बना सकें।

मैं 14 जनवरी, 1981 को प्रो. धवन से मिला। उनके चेहरे पर प्रसन्नता का भाव झलक गया था। उन्होंने कहा, 'उन्होंने मेरे व्यक्ति के काम के मूल्य को समझा, इससे मैं बहुत खुश हूँ।' फिर वे मुसकराए। मैं कभी भी किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिला जिसकी मुसकराहट प्रो. धवन जैसी हो—एक सफेद मुलायम बादल जैसी। आप उसे जिस तरह देखना चाहें, देख सकते हैं।

मैं ताज्जुब में पड़ गया था कि इसे कैसे आगे बढ़ाना चाहिए। 'क्या मुझे इस

पद के लिए औपचारिक रूप से आवेदन करना चाहिए ताकि डी.आर.डी.एल. नियुक्ति का आदेश भेज सके?' मैंने इस बारे में प्रो. धवन से बात की। 'नहीं, उनपर दबाव मत बनाओ। मेरी दिल्ली यात्रा के दौरान मुझे शीर्ष प्रबंधन से बात करने दो।' प्रो. धवन ने कहा। 'मैं जानता हूँ, तुम्हारा एक पैर हमेशा डी.आर.डी.ओ. में रहा है और अब तुम्हारा झुकाव पूरी तरह उनकी तरफ हो गया है।' प्रो. धवन मुझसे जो कह रहे थे, उसमें शायद सच्चाई तो थी, लेकिन मेरा दिल हमेशा इसरो में ही लगा था। क्या वाकई वे इस बात से अनभिज्ञ थे?

सन् 1981 का गणतंत्र दिवस चौंका देनेवाली खुशी लेकर आया। 25 जनवरी की शाम प्रो. यू.आर. राव के सचिव महादेवन ने मुझे दिल्ली से फोन करके बताया कि गृह मंत्रालय ने मुझे पद्म भूषण सम्मान से सम्मानित करने की घोषणा की है। इसके बाद अगला फोन प्रो. धवन का आया और उन्होंने मुझे बधाई दी। प्रो. धवन के फोन से मुझे उल्लास भरे आनंद का अनुभव हुआ, क्योंकि यह मेरे गुरु का फोन था। प्रो. धवन को भी पद्म विभूषण से सम्मानित किए जाने पर मैं बहुत ही आनंदित हुआ था। मैंने पूरे हृदय के साथ उन्हें बधाई दी थी। फिर मैंने डॉ. ब्रह्मप्रकाश को फोन किया और उन्हें धन्यवाद दिया। डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने इस औपचारिकता के लिए मुझे डाँटते हुए कहा, 'मुझे लग रहा है जैसे मेरे बेटे को यह सम्मान मिला है।' डॉ. ब्रह्मप्रकाश का यह स्नेह मुझे इतना गहरे तक छू गया कि मैं अपनी भावनाओं को और ज्यादा नियंत्रण में नहीं रख सका।

मेरे कमरे में बिस्मिल्लाह खान की शहनाई का संगीत बज रहा था। यह संगीत मुझे एक दूसरे काल, एक दूसरी जगह ले गया। मुझे लग रहा था कि मैं रामेश्वरम् गया और अपनी माँ से लिपट गया। मेरे पिताजी अपनी अँगुलियों से मेरे बालों को सहला रहे हैं। मेरे मार्गदर्शक जलालुद्दीन ने मसजिदवाली गली में जमा भीड़ को यह खबर सुनाई है। मेरी बहन जोहरा ने मेरे लिए विशेष मिठाई बनाई है। पक्षी लक्ष्मण शास्त्री ने मेरे माथे पर तिलक लगाया है। फादर सोलोमन ने मुझे पवित्र क्रॉस छूकर आशीर्वाद दिया है। मैंने देखा कि प्रो. साराभाई उपलब्धियों को देखकर मुसकरा रहे हैं। एक छोटा वृक्ष, जो उन्होंने बीस साल पहले लगाया था, अब एक बड़ा वृक्ष बन गया है, जिसके फलों का आनंद देशवासी ले रहे हैं।

मुझे पद्म भूषण मिलने की वी.एस.एस.सी. में मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई। कुछ लोग थे, जिन्होंने मेरी खुशी में हिस्सा बाँटा। कुछ लोग थे, जिन्हें लगा कि इस सम्मान के लिए मैं अनुचित रूप से चुना गया हूँ। मेरे कुछ बहुत ही करीबी साथी ईर्ष्यालु हो गए। कुछ लोग क्यों जीवन के मूल्यों को नहीं देख पाते? जीवन में

खुशी, संतुष्टि और सफलता हमारे सही चुनाव पर निर्भर करती है। जीवन में कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं जो आपके लिए व आपके खिलाफ काम कर रही हैं। हरेक को हर कदम पर इनमें भेद कर सही चुनाव करना होता है। मेरे अंतर्मन ने मुझसे कहा कि बहुत दिनों से महसूस हो रही, पर उपेक्षित नवीकरण की जरूरत का सही वक्त अब आ गया है। सोचा, अभी तक के लेख भरी स्लेट पोंछकर फिर से नए सवाल लिखूँ। क्या पहले किए सो सवाल सही थे? अपनी प्रगति को परखना बड़ा मुश्किल होता है। जीवन के इम्तिहान में परचा भी खुद बनाना होता है और उत्तर भी खुद ही लिखने होते हैं। यहाँ तक कि उन्हें जाँचना भी खुद ही को होता है। पूर्वग्रहों से इतर, इसरो में किया अठारह सालों का लंबा प्रवास बिना पीड़ा के छूटना असंभव था। अपने रूठे साथियों के लिए लेविस कैरोल की कुछ पंक्तियाँ बड़ी उपयुक्त लगीं—

'है मुझे मंजूर
लेना खून का इलजाम सिर पर
है मुझे स्वीकार कहलाना दीवाना
(कौन है जो होश में रहता हमेशा?)
पर कहे कोई कि मैंने छला उसको
कल्पना में भी किसीकी
है असंभव हो कभी अपराध मेरा।'

□

III

आराधना

(1981—1991)

कौशल, महत्त्वाकांक्षा,
सपने अपने
कसौटी पर कसो।
जब तक
कि दुर्बलता बने शक्ति,
कि अँधियारा उठे जगमग,
कि अन्याय हरे नीति।

—लेविस कैरोल

: दस :

इस समय मेरी सेवाओं को लेकर इसरो एवं डी.आर.डी.ओ. के बीच थोड़ी सी रस्साकशी चल रही थी। इसरो मुझे छोड़ने में थोड़ा हिचकिचा रहा था और डी.आर.डी.ओ. मुझे अपने यहाँ लेना चाह रहा था। कई महीने गुजर गए, इसरो और डी.आर.डी.ओ. के बीच पत्र-व्यवहार चलता रहा और रक्षा अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान तथा अंतरिक्ष विभाग के सचिवालयों के बीच आपसी सहमति से रास्ता निकालने के लिए बैठकें होती रहीं। इसी बीच प्रो. राजा रामन्ना रक्षामंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार पद से रिटायर हो गए। हैदराबाद की डिफेंस मैटेलर्जिकेल रिसर्च लेबोरेटरी (डी.एम.आर.एल.) के निदेशक डॉ. वी.एस. अरुणाचलम प्रो. रामन्ना के स्थान पर रक्षामंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार नियुक्त किए गए। डॉ. अरुणाचलम अपने आत्मविश्वास के लिए मशहूर थे और वैज्ञानिक नौकरशाही में कृत्रिमता और भद्रता का जरूरी भर ध्यान रखते थे। इसी बीच मुझे पता चला कि तब रक्षामंत्री आर. वेंकटरामन ने प्रो. धवन के साथ मेरे मिसाइल लेबोरेटरी में काम सँभालने के मामले पर चर्चा की। प्रो. धवन को भी रक्षा मंत्रालय में शीर्ष स्तर पर किसी निर्णयात्मक कदम की प्रतीक्षा थी। आखिरकार साल भर बाद, यानी फरवरी 1982 में मुझे डी.आर.डी.एल. का निदेशक नियुक्त करने का फैसला लिया गया।

इसरो में प्रो. धवन मेरे कमरे में आ जाया करते थे और अंतरिक्ष प्रक्षेपण परियोजनाओं के बारे में घंटों बातचीत करते रहते। ऐसे महान् वैज्ञानिक के साथ काम करना बड़े सौभाग्य की बात थी। इसरो छोड़ने के पहले प्रो. धवन ने मुझे सन् 2000 तक के भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की रूपरेखा पर वार्त्ता देने को कहा। इसरो के करीब-करीब सारे लोग—प्रबंधक, वैज्ञानिक और कर्मचारी—सभी मेरी यह वार्त्ता सुनने आए। एक अभिनव विदाई समारोह था वह।

डॉ. वी.एस. अरुणाचलम से मैं सन् 1976 में उस समय मिला था जब एस.एल.वी. के लिए मैं अल्युमिनियम मिश्रधातु के सिलसिले में डी.एम.आर.एल.

गया था। इसे एक निजी चुनौती के रूप में लेते हुए डॉ. अरुणाचलम ने देश में पहली बार अपनी तरह का ढलवाँ अल्युमिनियम तैयार किया। यह काम उन्होंने सिर्फ दो महीने के भीतर कर डाला था। अपनी ऊर्जा और उत्साह से मुझे आश्चर्यचकित करने में वे कभी भी पीछे नहीं रहे। इस नौजवान धातु विज्ञानी ने बहुत ही कम समय में धातु निर्माण विज्ञान को धातु निर्माण की नई प्रौद्योगिकी दी और फिर सामरिक रूप से बड़ी महत्त्वपूर्ण मिश्र धातुओं का विकास किया। लंबे एवं भव्य व्यक्तित्ववाले डॉ. अरुणाचलम हमेशा बिजली के डायनामो की तरह गतिमान रहते थे। मैंने उन्हें हमेशा एक असाधारण दोस्त और साथ काम करनेवाले विलक्षण साथी के रूप में पाया।

अप्रैल 1982 में मैं डी.आर.डी.एल. गया। उस वक्त एस.एल. बंसल डी.आर.डी.एल. के निदेशक थे। उन्होंने मुझे पूरी प्रयोगशाला दिखाई और वरिष्ठ वैज्ञानिकों से परिचय कराया। डी.आर.डी.एल. में उस समय पाँच परियोजनाओं पर काम चल रहा था और सोलह क्षमता निर्माण परियोजनाएँ चल रही थीं। इसके अलावा भविष्य में स्वदेशी मिसाइल तैयार करने की टेक्नोलॉजी विकसित करने को लेकर भी इस प्रयोगशाला में कई काम हो रहे थे। मैं दो 30 टन तरल ईंधनवाले रॉकेट इंजन के निर्माण की कोशिशों को देखकर विशेष रूप से प्रभावित हुआ।

इसी समय अन्ना विश्वविद्यालय, मद्रास ने मुझे 'डॉक्टर ऑफ साइंस' की मानद उपाधि से सम्मानित किया। एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग में डिग्री हासिल करने के करीब बीस साल बाद यह मानद उपाधि मुझे मिली थी। मुझे इस बात की खुशी थी कि अन्ना विश्वविद्यालय ने रॉकेट विज्ञान के क्षेत्र में मेरे काम को मान्यता दी; लेकिन जिस बात से मुझे सबसे ज्यादा खुशी हुई वह यह कि शैक्षिक जगत् में हमारे कार्य के मूल्य को समझा गया और उसे मान्यता मिली। संयोगवश मुझे यह मानद उपाधि जिस दीक्षांत समारोह में दी गई उसकी अध्यक्षता प्रो. राजा रामन्ना ने की थी।

मैंने 1 जून, 1982 को डी.आर.डी.एल. के निदेशक का पद सँभाला। बहुत ही जल्दी मैंने महसूस किया कि डेविल मिसाइल परियोजना को समेट दिए जाने की कसक अभी भी यहाँ है। कई विलक्षण वैज्ञानिक अभी तक असंतोष से उबर नहीं पाए हैं। वैज्ञानिक जगत् के बाहर के लोगों के लिए यह समझना काफी मुश्किल है कि जब किसी वैज्ञानिक के परवान चढ़ते हुए काम या प्रगति की दिशा में बढ़ रही परियोजना के काम को अचानक बंद कर दिया जाता है और ठंडे बस्ते में डाल दिया जाता है तो वैज्ञानिकों को कितनी पीड़ा होती है। डी.आर.डी.एल. में

जो आम मनोदशा थी और काम करने की गति थी, उसे देखकर मुझे सैमुअल टेलर कोलरिज की यह कविता याद आ गई—

'दिन गुजरते दिन
फँसे हम
बिना साँस, बिना गति।
एकदम जड़
बिना जीवन, बिना भाव।
जैसे किसी समंदर की तसवीर पर
बनी कोई नाव।'

मैंने पाया कि मेरे ज्यादातर वरिष्ठ साथी अपनी खंड-खंड हो चुकी उम्मीदों की पीड़ा में जी रहे थे। दूर-दूर तक यह महसूस किया जा रहा था कि रक्षा मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियों ने इस प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों के साथ धोखा किया है। मुझे यह साफ हो चला था कि उम्मीदों और दृष्टि को बढ़ाने के लिए डेविल परियोजना के प्रेत का अंतिम संस्कार कर दिया जाना बड़ा जरूरी था।

करीब एक महीने बाद जब नौसेनाध्यक्ष एडमिरल ए.एस. डॉसन डी.आर.डी.एल. आए तो उनकी इस यात्रा को मैंने अपनी टीम के साथ एक अवसर के रूप में इस्तेमाल किया। कुछ समय से टैक्टिकल कोर व्हीकल परियोजना (टी.सी.वी. परियोजना) का काम लटका हुआ था। इसकी कल्पना एक ऐसे कोर व्हीकल के रूप में की गई थी जिसमें जमीन से हवा में मार करनेवाली मिसाइल दागने के लिए जरूरी प्रणालियाँ हों, साथ ही विकिरण-रोधी हवा से जमीन पर मार कर सकनेवाली मिसाइल, जिसे हेलीकॉप्टर या किसी लड़ाकू विमान में लगाकर दागा जा सकता हो। मैंने एडमिरल डॉसन को इसकी समुद्र में युद्ध के दौरान भूमिका पर जोर दिया। मैंने सिर्फ इसकी तकनीकी बारीकियाँ ही नहीं बल्कि युद्धक्षेत्र में भी इसकी क्षमताओं के बारे में बताया। मैंने उन्हें इसकी उत्पादन योजना के बारे में भी पूरी बातें बताईं। मेरे नए साथियों के लिए संदेश प्रबल एवं साफ था—ऐसा कुछ मत बनाओ जिसे बाद में बेच नहीं सको और सिर्फ एक चीज को बनाने में ही अपना जीवन मत लगाओ। मिसाइल विकास एक बहुआयामी व्यापार है। अगर तुम लंबे समय तक एक ही दिशा में काम करते रहोगे तो अटककर रह जाओगे।

डी.आर.डी.एल. में मेरे शुरू के कुछ महीने बहुत ही आकर्षण भरे रहे। सेंट जोसेफ में मैंने पढ़ा था कि इलेक्ट्रॉन एक कण की तरह भी दिख सकता है और

तरंग के रूप में भी; यह आप पर निर्भर करता है कि इसे आप किस रूप में देखते हैं। अगर आप कण के रूप में प्रश्न पूछेंगे तो उत्तर भी उसी रूप में मिलेगा। अगर तरंग के संदर्भ में सवाल पूछेंगे तो जवाब भी उस संदर्भ में मिलेगा। मैंने न सिर्फ अपने लक्ष्यों की व्याख्या की और उन्हें स्पष्ट किया बल्कि उन्हें अपने कार्य तथा अपने बीच ही आपस में बाँटा भी। मुझे अभी तक याद है कि एक बार मीटिंग में मैंने रोनॉल्ड फिशर का उद्धरण दिया था--'चीनी की जिस मिठास का हम स्वाद लेते हैं वह न तो चीनी का गुण है और न ही हमारा। चीनी के साथ जो पारस्परिक क्रिया की प्रक्रिया है, हम तो उसे अनुभव के रूप में प्राप्त कर रहे हैं।'

उस समय तक जमीन से जमीन पर मार कर सकनेवाली मिसाइल पर काफी कुछ अच्छा काम हो चुका था। यह मिसाइल अपने ऊर्ध्वाधर पथ पर प्रक्षेपित की जा सकती थी। डी.आर.डी.एल. के कार्यदल का संकल्प देखकर मैं चकित था। अपनी पुरानी परियोजनाओं को ठंडे बस्ते में डाल दिए जाने या बंद कर दिए जाने के बावजूद अब ये साथी आगे काम करने के लिए काफी उत्सुक थे। मैंने विभिन्न उपप्रणालियों की समीक्षा की व्यवस्था की, ताकि किसी विशेष नतीजे पर पहुँचा जा सके। इसके साथ ही मैंने इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, काउंसिल फॉर साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च और दूसरे शैक्षिक संस्थानों से विशेषज्ञ लोगों को डी.आर.डी.एल. में बुलाना शुरू किया। मुझे लगा कि डी.आर.डी.एल. के दमघोंटू कार्य-केंद्रों को ताजा हवा की जरूरत है। एक बार जब हमने पूरी तरह खिड़की खोल दी, वैज्ञानिक प्रतिभा का प्रकाश इसमें आना शुरू हो गया, बयास भर गई। कोलरिज की एक और कविता मुझे याद पड़ती है—

'हौले-हौले
बढ़ी नाव,
उठती लहरों पर
धीरे-धीरे
चढ़ी परवान।'

सन् 1983 की शुरुआत में प्रो. धवन डी.आर.डी.एल. में आए। मैंने उन्हें खुद की दी हुई वह सलाह याद दिलाई, जो एक दशक से भी ज्यादा समय पहले उन्होंने मुझे दी थी। 'तुम्हारी कल्पनाएँ साकार हो सकें, इसके लिए पहले तुम्हें सपने सँजोने होंगे। कुछ लोग जीवन में जो चाहते हैं, उसे अर्जित करने के लिए उस दिशा में लगातार चलते जाते हैं; जबकि कुछ लोग घिसटनेवाली स्थिति में ही रहते

हैं और कभी नहीं बढ़ पाते; क्योंकि उन्हें यह पता ही नहीं रहता कि वे चाहते क्या हैं और न ही यह जानते हैं कि अपेक्षित लक्ष्य कैसे हासिल किया जाए।' यह तो इसरो का सौभाग्य है कि उसें प्रो. साराभाई और प्रो. धवन जैसी हस्तियों का नेतृत्व मिला, जिन्होंने इसरो के लक्ष्य तय किए और उसके मिशनों को अपने जीवन से भी ज्यादा व्यापक बनाया तथा संपूर्ण कार्यदल के लिए प्रेरणा का स्रोत बने रहे। डी.आर.डी.एल. ऐसा खुशनसीब नहीं रहा। इस अनूठी प्रयोगशाला ने ऐसी विकलांग भूमिका निभाई जो साउथ ब्लॉक में अपनी मौजूदा क्षमताओं, अस्तित्व तथा उम्मीदों को नहीं बना पाई। मैंने प्रो. धवन को यहाँ के बहुत ही ऊँचे दर्जे के, लेकिन थोड़े किंकर्तव्यविमूढ़ वैज्ञानिकों की टीम के बारे में बताया। प्रो. धवन ने अपनी चिर परिचित मुसकराहट के साथ जवाब दिया, जिसकी कई तरह से व्याख्या की जा सकती थी।

डी.आर.डी.एल. में शोध एवं विकास की गतिविधियों को गति देने के लिए यह जरूरी था कि वैज्ञानिक, तकनीकी एवं टेक्नोलॉजी से संबंधित समस्याओं को तेजी से निबटाने के लिए जल्दी फैसले लिये जाएँ। मैंने अपने पूरे जीवन में वैज्ञानिक मसलों पर खुलेपन को पूरे उत्साह से महत्त्व दिया। बंद कमरों में होनेवाली चर्चाओं और गुपचुप जोड़-तोड़ से चलाए जानेवाले प्रबंधन में मैंने यह बहुत करीब से देखा था कि चीजें किस तरह क्षय एवं विखंडित होती जाती हैं। मैंने इस तरह की कोशिशों की हमेशा उपेक्षा की और विरोध किया। इसलिए पहला बड़ा फैसला हमने वरिष्ठ वैज्ञानिकों का एक फोरम बनाने का लिया, ताकि इस फोरम में महत्त्वपूर्ण मामलों पर विचार-विमर्श एवं बहस हो सके और सामूहिक कोशिशों से ही सबकुछ हो। उस तरह डी.आर.डी.एल. में मिसाइल टेक्नोलॉजी कमेटी नाम की एक उच्च स्तरीय समिति बना दी गई। इसमें भागीदारी के माध्यम से अच्छे प्रबंधन की धारणा पर जोर दिया गया और इस बात की भरपूर कोशिश की गई कि प्रयोगशाला की प्रबंधन गतिविधियों में मध्यम दर्जे के वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों की पूरी-पूरी भागीदारी बन सके।

दिनोंदिन की बहस और हफ्तों-हफ्तों के चिंतन से अंततः एक लंबी अवधि का 'गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम' यानी आई.जी.एम.डी.पी. तैयार किया गया। मैंने कहीं पढ़ा था—'जहाँ तुम जा रहे हो उसके बारे में जानो। दुनिया में यह जानना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि हम कहाँ खड़े हैं, बल्कि यह देखो कि हम किस दिशा में जा रहे हैं।' पश्चिमी देशों की तकनीकी ताकत, जो अगर हमारे पास नहीं है तो हमें भी यह सामर्थ्य हासिल करनी होगी—और यही संकल्प हमारी

शक्ति बना। स्वदेशी मिसाइलों के उत्पादन के लिए एक स्पष्ट और सुपरिभाषित मिसाइल विकास कार्यक्रम तैयार करने के उद्देश्य से मेरी अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई गई। इस कमेटी के सदस्यों में मेरे अलावा भारत डायनेमिक्स लिमिटेड, हैदराबाद के प्रमुख जेड.पी. मार्शल, एन.आर. अय्यर, ए.के. कपूर और के.एस. वेंकटरामन थे। हमने राजनीतिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति (सी.सी.पी.ए.) के लिए एक दस्तावेज तैयार किया। तीनों रक्षा सेवाओं के प्रतिनिधियों से सलाह-मशविरे के बाद इसे अंतिम रूप दिया गया। इसमें बारह साल के लिए तीन सौ नब्बे करोड़ रुपए के खर्च का अनुमान व्यक्त किया गया था।

विकास कार्यक्रम प्रायः उत्पादन के चरण में आकर अटक जाते हैं और इसका मूल कारण पैसे की कमी होता है। हमने दो मिसाइलों के विकास एवं उत्पाद के लिए पैसा चाहा था। एक नीची ऊँचाई पर तुरंत मार करनेवाली टैक्टिकल कोर व्हीकल मिसाइल और दूसरी जमीन से जमीन पर मध्यम दूरी तक मार कर सकनेवाली मिसाइल। दूसरे चरण में हमने जमीन से हवा में मार करनेवाली ऐसी मिसाइल तैयार करने की योजना बनाई थी, जो एक साथ कई लक्ष्यों पर वार कर सके। टैंक भेदी मिसाइलों के निर्माण के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम करने के लिए डी.आर.डी.एल. की अपनी ख्याति थी। हमने तीसरी पीढ़ी की टैंक भेदी निर्देशित मिसाइल विकसित करने का भी प्रस्ताव रखा था, जो टैंक भस्म करने की क्षमताओं से युक्त होती। प्रस्ताव से मेरे साथी खुश थे। काफी पहले शुरू किए गए कामों को फिर से शुरू करने का उन्हें अवसर दिखाई दिया था। लेकिन मैं पूरी तरह संतुष्ट नहीं था। मैं अपने री-एंट्री एक्सपेरिमेंट लॉन्च व्हीकल (रेक्स) के बिसरे सपने को साकार करने के लिए लगा हुआ था। मैंने अपने साथियों को उस तकनीकी विकास परियोजना पर काम शुरू करने को कहा जिसमें हीट शील्डों के डिजाइन के लिए आँकड़े उपलब्ध किए जा सकें। ये शील्डें भविष्य की लंबी दूरी तक मार करनेवाली मिसाइलों के निर्माण में काम आनी थीं।

मैं साउथ ब्लॉक में एक बैठक में गया। बैठक की अध्यक्षता रक्षामंत्री आर. वेंकटरामन ने की। इस बैठक में तीनों सेनाओं के प्रमुख—जनरल कृष्णाराव, एयर चीफ मार्शल दिलबाग सिंह और एडमिरल डॉसन भी मौजूद थे। कैबिनेट सचिव कृष्णा राव साहिब, रक्षा सचिव एस.एम. घोष और सचिव (व्यय) आर. गणपति भी इस बैठक में थे। हमारी क्षमताओं, संभाव्यता, आवश्यक बुनियादी तकनीकी ढाँचे की उपलब्धता, व्यवहार्यता, कार्यक्रम तथा लागत को लेकर हरेक के भीतर तरह-तरह की शंकाएँ नजर आ रही थीं। पूरे प्रश्नोत्तर सत्र के दौरान डॉ. अरुणाचलम

चट्टान की तरह डटे रहे। वैज्ञानिकों के बीच होनेवाले प्रायः इस तरह के मतभेदों को लेकर सदस्य आशंकित थे। यद्यपि कुछ सवाल हमारे महत्त्वाकांक्षी प्रस्तावों को लेकर भी थे। बैठक के अंत में रक्षामंत्री वेंकटरामन ने हमें शाम को—यानी तीन घंटे बाद मिलने को कहा।

बीच का समय हमने क्रमचय व संचय पर काम करने में लगाया। अगर सिर्फ सौ करोड़ रुपए ही मंजूर किए हैं तो हम इसका निर्धारण किस प्रकार करेंगे। माना कि वे हमें दो सौ करोड़ रुपए देते हैं, तब हम क्या करेंगे? जब हम शाम को रक्षामंत्री से मिले तब मैं झुक गया था और लग रहा था कि हम किसी भी दर पर कुछ पैसा लेने जा रहे हैं। लेकिन जब उन्होंने सुझाव दिया कि हमें चरणों में मिसाइल तैयार करने के बजाय इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम (समग्र निर्देशित मिसाइल विकास कार्यक्रम) शुरू करना चाहिए तो हमें भरोसा नहीं हुआ कि हम क्या सुन रहे हैं।

रक्षामंत्री के सुझाव से हम एकदम भौंचक रह गए थे। थोड़ा रुकने के बाद डॉ. अरुणाचलम ने जवाब दिया—'इसपर फिर से विचार के लिए हम कुछ समय चाहते हैं, सर।' 'आप कल सुबह फिर आइए।' रक्षामंत्री ने जवाब दिया। मुझे प्रो. साराभाई के उत्साह और दृष्टि का ध्यान आ रहा था। उस रात डॉ. अरुणाचलम और मैंने मिलकर फिर से पूरी योजना पर काम किया।

हमने अपने प्रस्ताव में कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण विस्तार एवं सुधार किए थे। इनमें डिजाइन, निर्माण, प्रणाली संयोजन, योग्यता, परीक्षण उड़ानें, मूल्यांकन, अद्यतन करने, उत्पादन गुणवत्ता, विश्वसनीयता और वित्तीय व्यवहार्यता जैसे सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों पर हर दृष्टि से फिर से विचार किया गया। हमने तब इन सबको देश की सशस्त्र सेनाओं की जरूरत पूरी करने के लिए सबको एक कार्यसूत्र में बाँधा। डिजाइन, विकास एवं उत्पादन की अवधारणा पर हमने काम किया और हर स्तर पर उपयोगकर्ता तथा जाँच एजेंसियों की भागीदारी का प्रस्ताव रखा। हम अपनी सेनाओं को समकालीन मिसाइलें उपलब्ध कराना चाह रहे थे, न कि पुराने हो चुके हथियार। हमारे लिए यह एक बहुत बड़ी चुनौती थी, जो हमें दी गई थी।

जब हम अपना काम खत्म कर चुके थे तब तक दिन निकल चुका था। नाश्ते पर अचानक मुझे याद आया कि उसी दिन शाम को मुझे अपनी भतीजी जमीला की शादी में रामेश्वरम् पहुँचना है। मैंने सोचा कि कुछ भी करने के लिए पहले ही काफी देरी हो चुकी है। अगर मैं दिन में विमान से मद्रास चला भी जाता हूँ तो वहाँ से रामेश्वरम् कैसे पहुँचूँगा। मद्रास और मदुरै के बीच भी कोई हवाई सेवा नहीं थी,

जिससे कि मुझे शाम को रामेश्वरम् की ट्रेन मिल जाती। मेरे भीतर एक अपराध बोध की कसक-सी आ गई थी। मैंने अपने आपसे पूछा—क्या परिवार के प्रति वायदों एवं दायित्वों को भूल जाना उचित है? जमीला मेरे लिए एक बेटी से कहीं ज्यादा थी। दिल्ली में कामकाजी व्यवस्था और चिंता के कारण जमीला की शादी से दूर रहने के कारण मैं काफी दु:खी था। मैंने नाश्ता खत्म किया और मीटिंग के लिए चला गया।

जब हम रक्षामंत्री वेंकटरामन से मिले और उन्हें अपना संशोधित प्रस्ताव दिखाया तो वे काफी प्रसन्न हुए। मिसाइल विकास परियोजना का प्रस्ताव एक ही रात में बदलकर व्यापक नतीजोंवाले इंटीग्रेटेड प्रोग्राम (समग्र कार्यक्रम) के ब्लू प्रिंट में तब्दील हो गया था। इस नए समग्र कार्यक्रम में व्यापक तथा आधुनिकतम टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल होना था और इसमें वह सबकुछ था जो पिछली शाम रक्षामंत्री के मस्तिष्क में था तथा उन्होंने हमें बताया था। रक्षामंत्री के प्रति मेरे भीतर काफी सम्मान था, फिर भी मुझे यह पक्का विश्वास नहीं था कि हमारे पूरे प्रस्ताव को मंजूरी मिल जाएगी। लेकिन उन्होंने मंजूरी दे दी। मैं काफी खुश था।

रक्षामंत्री उठे और मीटिंग खत्म होने का संकेत दिया। मेरी ओर मुड़ते हुए वे बोले, 'चूँकि मैं तुम्हें यहाँ लाया हूँ, मेरी उम्मीद थी कि तुम ऐसा ही कुछ करके लाओगे। मैं तुम्हारा काम देखकर काफी खुश हूँ।' एक ही क्षण में सन् 1982 में डी.आर.डी.एल. में निदेशक पद पर मेरी नियुक्ति की मंजूरी को लेकर जो रहस्य अभी तक बना हुआ था, वह सामने आ गया। तो यह रक्षामंत्री ही थे जो मुझे डी.आर.डी.एल. में लाए थे। धन्यवाद देने जैसे ही दरवाजे की ओर मुड़ा तो मैंने सुना कि डॉ. अरुणाचलम रक्षामंत्री को आज शाम रामेश्वरम् में जमीला की शादी के बारे में बता रहे हैं। मैं भौंचक रह गया कि क्या डॉ. अरुणाचलम को रक्षामंत्री के समक्ष यह मामला लाना चाहिए था। उनके जैसे व्यक्तित्ववाला एवं महिमामय साउथ ब्लॉक में बैठा कोई व्यक्ति भला रामेश्वरम् की मसजिदवाली गली के एक छोटे से घर में होने जा रही शादी के बारे में कोई चिंता क्योंकर करेगा?

एक महान् वार्त्ताकार के रूप में मैंने डॉ. अरुणाचलम का हमेशा आदर किया है। उनमें कल्पनाशीलता, ज्ञान एवं संतुलित सूझबूझ तथा भाषा पर अधिकार—इनका अद्‌भुत समन्वय था, जिसे उन्होंने इस अवसर पर प्रदर्शित कर दिया था। जब रक्षामंत्री ने मेरे लिए मद्रास से मदुरै तक जाने के लिए भारतीय वायुसेना के हेलीकॉप्टर का इंतजाम कर दिया था, ताकि मैं इंडियन एयरलाइंस की नियमित उड़ान से मद्रास उतरकर हेलीकॉप्टर से मदुरै जा सकूँ, तो मैं अभिभूत हो गया।

डॉ. अरुणाचलम ने कहा, 'यह तुमने अपनी पिछले छह महीने की कड़ी मेहनत से अर्जित किया है।' मद्रास की उड़ान के दौरान मैंने अपने हवाई टिकट के पीछे ही लिखा—

'जिसने कभी न गर्दिश देखी
जिसने कभी न फाका खाया
क्या खोजेगा? क्या पाएगा?
रामेश्वरम् अगर आएगा।'

विमान जैसे ही दिल्ली से मद्रास पहुँचा, वहीं पास ही में एयरफोर्स का हेलीकॉप्टर भी उतरा था। कुछ ही मिनटों में मैं मदुरै के रास्ते पर था। वायुसेना के कमांडर ने मुझे सही समय पर रेलवे स्टेशन पहुँचा दिया था, जहाँ रामेश्वरम् के लिए ट्रेन प्लेटफॉर्म से छूटने ही वाली थी। जमीला की शादी के ठीक समय मैं रामेश्वरम् पहुँच गया था। अपने भाई की बेटी को मैंने पिता के प्यार के समान आशीर्वाद दिया।

रक्षामंत्री ने हमारे प्रस्ताव को कैबिनेट के समक्ष न सिर्फ रखा बल्कि इसकी पुरजोर वकालत भी की। हमारे प्रस्ताव पर उनकी सिफारिशों को मान लिया गया और इस उद्देश्य के लिए तीन सौ अट्ठासी करोड़ रुपए की अप्रत्याशित राशि मंजूर कर दी गई। इस प्रकार भारत के प्रख्यात इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम (आई.जी.एम.डी.पी.) की शुरुआत हुई।

जब मैंने डी.आर.डी.एल. में मिसाइल टेक्नोलॉजी कमेटी को सरकारी मंजूरी का पत्र दिखाया तो सबमें एक गजब का उत्साह-सा भर गया। भारत की स्वावलंबन की भावना के अनुरूप ही प्रस्तावित परियोजनाओं को नाम दिए गए। जमीन से जमीन पर मार करनेवाली मिसाइल प्रणाली को 'पृथ्वी' और टैक्टिकल कोर्स व्हीकल को 'त्रिशूल' (भगवान् शिव का अस्त्र) नाम दिया गया। जमीन से हवा में मार करनेवाली रक्षा प्रणाली को 'आकाश' और टैंकरोधी मिसाइल परियोजना को 'नाग' नाम दिया गया। मैंने अपने मन में सँजोए रेक्स (रि-एंट्री एक्सपेरिमेंट) के बहुप्रतीक्षित सपने को 'अग्नि' नाम दिया। डॉ. अरुणाचलम डी.आर.डी.एल. आएं और 27 जुलाई, 1983 को उन्होंने आई.जी.एम.डी.पी. की औपचारिक रूप से शुरुआत की। यह एक ऐसी बड़ी घटना थी जिसमें डी.आर.डी.एल. के हरेक कर्मचारी ने हिस्सा लिया। भारतीय अंतरिक्ष शोध से जुड़े हर व्यक्ति को इसमें आमंत्रित किया गया था। दूसरी प्रयोगशालाओं और संगठनों से बड़ी संख्या में वैज्ञानिकों, अकादमिक संस्थानों से प्रोफेसरों, सशस्त्र सेनाओं के प्रतिनिधियों—जो अब हमारे व्यावसायिक

भागीदार थे, को इस मौके पर बुलाया गया था। जितने भागीदारों को हमने आमंत्रित किया था उनके लिए जगह पूरी नहीं पड़ पाई थी, तो इसके लिए एक क्लोज्ड सर्किट टी.वी. नेटवर्क स्थापित किया गया था, ताकि समारोह में भाग ले रहे लोगों के बीच संवाद हो सके। 18 जुलाई, 1980 को जब एस.एल.वी.-3 के द्वारा रोहिणी को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया गया था तो वह मेरे कर्म जीवन का दूसरा महत्त्वपूर्ण दिन था।

□

: ग्यारह :

आई.जी.एम.डी.पी. की शुरुआत भारतीय वैज्ञानिक जगत् में एक नई चमक लाने जैसा था। दुनिया के कुछ विशिष्ट राष्ट्रों के पास ही मिसाइल तकनीक थी। लोग यह देखने के लिए उत्सुक थे कि इस समय भारत के पास क्या है। हम वह हासिल करने जा रहे थे जिसका हमने वायदा किया था। देश में आई.जी.एम.डी.पी. का महत्त्व वाकई अद्वितीय था और भारतीय शोध एवं विकास प्रतिष्ठानों में जो नियम व मानक थे वे इस परियोजना के लिए निर्धारित किए गए समय के लिए बिलकुल अव्यावहारिक थे। मैं यह अच्छी तरह जानता था कि इस कार्यक्रम के लिए पैसा मंजूर कराने का सबसे अच्छा यही तरीका है कि दस फीसदी काम हो चुका हो। इसे प्राप्त करना एक बिलकुल अलग मामला होगा। आपके पास जितना ज्यादा पैसा होगा उतना ही ज्यादा आपको काम जारी रखना होगा। अब तक काम चालू करने के लिए हमें आवश्यक राशि एवं स्वतंत्रता दे दी गई थी। मुझे अपनी टीम को लेकर आगे बढ़ना था और जो वायदे मैंने किए थे उन्हें पूरा कर दिखाना था।

इस मिसाइल कार्यक्रम को डिजाइन से लेकर इसे तैनात करने के चरणों तक पहुँचाने के लिए क्या-क्या जरूरतें थीं? श्रेष्ठ मानव शक्ति उपलब्ध थी, पैसा मंजूर हो चुका था और कुछ ढाँचागत सुविधाएँ भी थीं। तब फिर कमी क्या थी? इन तीन ठोस चीजों के अलावा किसी परियोजना को सफल बनाने की और क्या जरूरतें होती हैं? अपने एस.एल.वी.-3 के अनुभवों से मेरा मानना है कि मुझे इसका जवाब पता है। मूल कठिनाई यह थी कि हमारे देश के प्रतिष्ठान मिसाइल प्रौद्योगिकी में प्रवीणता हासिल करने जा रहे थे। बाहर, दूसरे देशों से मुझे कोई उम्मीद नहीं थी। टेक्नोलॉजी एक सामूहिक गतिविधि है। हमें नेतृत्व करनेवाले ऐसे लोगों की जरूरत थी जो मिसाइल कार्यक्रम में न सिर्फ अपने मन व प्राण से लग सकें बल्कि दूसरे सैकड़ों वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को भी साथ लेकर चल सकें। हमें यह भी

मालूम था कि प्रयोगशालाओं में फैले आपसी अंतर्विरोधों और प्रक्रियागत विसंगतियों से निबटने की भी तैयारी करनी थी। हमें सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के मौजूदा रवैए का भी विरोध करना था, जो यह मानकर चल रही थीं कि उनके काम के आगे कोई भी नहीं टिक सकता। पूरी व्यवस्था—इसके लोग, प्रक्रियाएँ, बुनियादी ढाँचा, सभी को अपने आपमें विस्तार करना होगा। हमने कुछ ऐसा हासिल करने का फैसला किया जो हमारी सामूहिक राष्ट्रीय क्षमताओं से कहीं बाहर था और मुझे इस बारे में कहीं कोई भ्रम नहीं था कि जब तक हमारी टीम समानुपात या संभाव्यता के आधार पर काम नहीं करेगी तब तक कुछ भी हासिल नहीं हो पाएगा।

डी.आर.डी.एल. की जो सबसे ज्यादा उल्लेखनीय विशेषता थी, वह यह कि यहाँ बड़ी संख्या में विलक्षण प्रतिभा के वैज्ञानिक थे; पर दुर्भाग्यवश उनमें से कई कठोर एवं विद्रोही स्वभाववाले थे। परिस्थितिवश उनके पास ऐसा पर्याप्त संचित अनुभव नहीं था जो उन्हें अपने स्वयं के फैसलों के बारे में आत्मविश्वास से परिपूर्ण बनाता। कुल मिलाकर वे तमाम मामलों पर विचार-विमर्श तो बहुत उत्साह से करते, लेकिन अंततः मानते जरा सी बात। वे बाहरी विशेषज्ञों के ज्ञान और ताकत में भी निर्विवाद रूप से भरोसा करते, जो कभी-कभी अंधविश्वास में बदल जाता।

डी.आर.डी.एल. में एक बहुत ही मजेदार व्यक्ति से मैं मिला। उसका नाम था—ए.वी. रंगाराव। वह एक अच्छे वाक्पटु और आकर्षक व्यक्तित्ववाले भद्र पुरुष थे। वह आमतौर से गले में लाल रंग की टाई, चैक का कोट और ढीली-ढाली पैंट पहनते थे। हैदराबाद के गरमी भरे मौसम में भी वह यही सब पहनते थे और इसमें भी पूरी आस्तीनवाली शर्ट तथा जूते। सफेद, घनी दाढ़ी और दाँतों के बीच पाइप दबाए तथा चारों ओर एक गजब की भव्यता लिये हुए रंगाराव बस थोड़े से दंभी थे।

मैंने रंगाराव से मौजूदा प्रबंध व्यवस्था में मानव संसाधनों के भरपूर इस्तेमाल के बारे में राय-मशविरा किया। रंगाराव उन वैज्ञानिकों के साथ कई मीटिंगों में हिस्सा ले चुके थे, जो स्वदेशी मिसाइल टेक्नोलॉजी विकसित करने और आई.जी.एम.डी.पी. के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करने के लिए होती रही थीं। लंबे विचार-विमर्श तथा वैज्ञानिकों के वैचारिक आदान-प्रदान के बाद हमने प्रयोगशाला को तकनीकी प्रधान ढाँचे के रूप में पुनर्गठित करने का फैसला किया। परियोजनाओं के लिए विभिन्न कार्यों को शुरू करने के लिए हमें एक सुव्यवस्थित ढाँचा तैयार करने की जरूरत थी। चार महीने से भी कम समय में चार सौ वैज्ञानिकों

ने मिसाइल कार्यक्रम पर काम करना शुरू कर दिया।

इस दौरान मेरे सामने सबसे महत्त्वपूर्ण काम परियोजना निदेशकों के चयन करने का था, जो मिसाइल परियोजनाओं का नेतृत्व कर सकें। हमारे पास बड़ी संख्या में प्रतिभावान् वैज्ञानिक थे। दरअसल यह एक समृद्ध बाजार की तरह था। सवाल यह था कि किसे लिया जाए—एक योजनाकार को, एक घुमक्कड़ को या एक तानाशाह को, या फिर किसी टीम के व्यक्ति को? मैं एक ऐसा सही नेता चाहता था जो स्पष्ट रूप से लक्ष्य को ध्यान में रखे और विभिन्न केंद्रों के काम करनेवाले अपनी टीम के सदस्यों की पूरी ऊर्जा को इस प्रकार इस्तेमाल करे कि हर व्यक्ति अपने लक्ष्य के प्रति काम में जुटा रहे।

यह एक बहुत ही मुश्किल काम था। पिछले दो दशकों के दौरान इसरो की बड़ी परियोजनाओं में काम करने के दौरान मैंने कुछ नियम सीख लिये थे। गलत चुनाव भविष्य के पूरे कार्यक्रम को चौपट कर देता। मैंने तमाम बड़े वैज्ञानिकों और इंजीनियरों से विस्तृत विचार-विमर्श किया। मैं चाहता था कि ये पाँच परियोजना निदेशक दूसरे पच्चीस परियोजना निदेशकों और भविष्य के टीम नेताओं को प्रशिक्षित करें।

मेरे कई वरिष्ठ साथियों—जिनका नाम लेना यहाँ उचित नहीं होगा, क्योंकि यह मेरी सिर्फ कल्पना भी हो सकती है—ने इस दौरान मुझसे दोस्ती बढ़ाने की कोशिशें की थीं। मैंने उनकी दोस्ती का सम्मान किया, लेकिन किसी भी तरह के करीबी संबंधों को टाला। मित्र के प्रति वफादारी के माध्यम से कोई भी आसानी से गलत काम कर सकता है, जो अमूमन संगठन के हित में नहीं होता है।

शायद मेरे एकाकी रहने के पीछे मुख्य उद्देश्य प्रेम की पीड़ा से भागने की इच्छा थी, जिसे मैं रॉकेट बनाने की तुलना में काफी मुश्किल समझता हूँ। देश में रॉकेट विज्ञान को प्रोत्साहित करने के लिए जीवन में मेरी सारी इच्छाएँ बस इसी सच्चाई के रूप में साकार हुईं।

मुझे कुछ समय लगा और इस फैसले पर विचार करने में काफी मशक्कत करनी पड़ी कि इन पाँचों परियोजनाओं का नेतृत्व किसे करना चाहिए। अपना फैसला लेने के पहले मैंने कई वैज्ञानिकों के कामकाज की शैली और उनका तरीका देखा। मुझे लगता है कि मेरे कुछ अवलोकन आपको रुचिकर लगेंगे।

किसी भी व्यक्ति के काम करने की शैली का बुनियादी पक्ष यह है कि वह काम की योजना किस प्रकार बनाता है और कार्यों को कितने सुव्यवस्थित ढंग से करता है। एक ओर तो एक ऐसा चौकस योजनाकार है जो कोई भी कदम उठाने से

पूर्व हर बात की हर स्तर पर सावधानी से जाँच करता है, अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से वह गलती होने की संभावना का भी पता लगा लेता है, वह सारी संभावनाओं को साथ लेकर चलने की कोशिश करता है तो दूसरी ओर एक बहुत ही तेज चलनेवाला व्यक्ति है, जो बिना किसी योजना के बेतरतीब ढंग से काम करता है। एक विचार से प्रेरित होकर तेज चलनेवाला कभी भी कार्यवाही के लिए तैयार रहता है।

व्यक्ति की कार्यशैली का दूसरा पहलू नियंत्रण का है। ऊर्जा एवं ध्यान दिया जाना यह सुनिश्चित करता है कि काम सही दिशा में चल रहा है। एक ओर तो एक सख्त नियंत्रक होता है, कड़ा प्रशासक होता है, जो नियमों एवं नीतियों का पूरे जोश के साथ पालन करता है और दूसरी ओर ऐसे लोग होते हैं जो आजादी और लचीलेपन के साथ चलते हैं। उनमें नौकरशाही का गुण कम होता है। वे अपने अधीनस्थों को आसानी से काफी छूट दे देते हैं। मैं ऐसे नेतृत्वशाली लोग चाहता था जो मध्य मार्गी हों, जो बिना सख्ती के नियंत्रण कर सकें।

मैं ऐसे आदमी चाहता था जिनमें संभावनाओं के साथ बढ़ने की क्षमता हो, सभी संभव विकल्प तलाशने का धैर्य हो, नई परिस्थितियों में पुराने सिद्धांतों-नियमों से काम लेने की सूझबूझ हो, जिनमें आगे बढ़ने के लिए अपना रास्ता तैयार करने का कौशल हो। मैं चाह रहा था कि इन्हें इस प्रकार से समायोजित किया जाए जिससे ये एक-दूसरे की टीमों में अपने-अपने अधिकारों का मिल-बाँटकर प्रयोग करें, अच्छा काम दें, नए-नए विचारों का समावेश करें, प्रतिभावान् लोगों को सम्मान मिले और बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह पर गौर हो। समस्याओं, चीजों को मिल-बैठकर आम राय से हल करने की योग्यता हो, भूल-चूक की जवाबदेही तय हो। इन सबके अलावा उन्हें सफलता एवं असुविधा दोनों के योग्य बनना चाहिए।

'पृथ्वी' परियोजना के नेतृत्व के लिए चल रही मेरी खोज कर्नल वी.जे. सुंदरम के साथ खत्म हुई। कर्नल सुंदरम भारतीय सेना की ई.एम.ई. कोर में थे। एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर और मैकेनिकल वाइब्रेशन (यांत्रिक कंपन्नों) के विशेषज्ञ सुंदरम डी.आर.डी.एल. के ढाँचा समूह (स्ट्रक्चर्स ग्रुप) के प्रमुख थे। मैंने उनमें पाया कि वह विरोधाभासी दृष्टिकोण को हल करने के लिए नए प्रयोग करने को तत्पर रहते थे। सामूहिक कार्य में वह एक प्रयोगकर्ता एवं प्रवर्तक के रूप में थे। काम करने के वैकल्पिक तरीकों का मूल्यांकन करने में भी उनमें अद्‌भुत क्षमता थी। वे आगे बढ़ने की नई परियोजनाओं के लक्ष्यों के बारे में, जिनसे कुछ समाधान निकल सकें, हमेशा विचार करते थे; जिनके बारे में पहले कभी नहीं सोचा गया था। वह अधीनस्थ प्रतिरोध भी दरसा सकते हैं, अगर लक्ष्य

को लेकर उनकी दृष्टि स्पष्ट नहीं हो। इस तरह एक टीम के नेता की महत्ता असरदार तरीके से कार्य दिशा-निर्देश देने में होती है। मुझे लगा, 'पृथ्वी' के परियोजना निदेशक को सबसे पहले उत्पादन एजेंसियों और सशस्त्र बलों के साथ फैसले लेने होंगे; सुंदरम का चुनाव सबसे ज्यादा सही रहेगा जो उन ठोस फैसलों को देख सके।

'त्रिशूल' के लिए मैं ऐसे व्यक्ति की तलाश में था जिसे न सिर्फ इलेक्ट्रॉनिक्स एवं मिसाइल युद्ध की ठोस जानकारी हो बल्कि जो टीम के सदस्यों में आपसी समझ बढ़ाने के लिए पेचीदगियों को भी समझा सके और टीम का समर्थन प्राप्त कर सके। इसके लिए मुझे कमांडर एस.आर. मोहन उपयुक्त लगे, जिनमें काम को लगन के साथ करने की जादुई शक्ति थी। कमांडर मोहन नौसेना से रक्षा शोध एवं विकास में आए थे।

'अग्नि', जो मेरा सपना थी, के लिए किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो इस परियोजना में कभी-कभी मेरे दखल को बरदाश्त कर सके। यह बात मुझे आर.एन. अग्रवाल में नजर आई। वह मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के विलक्षण छात्रों में से थे। वह डी.आर.डी.एल. में वैमानिकी परीक्षण सुविधाओं का प्रबंधन सँभाल रहे थे।

तकनीकी जटिलताओं के कारण 'आकाश' एवं 'नाग' को तब भविष्य की मिसाइलों के रूप में तैयार करने पर विचार किया गया। इनकी गतिविधियाँ करीब आधे दशक बाद तेजी पर होने की उम्मीद थी। इसलिए मैंने 'आकाश' के लिए प्रह्लाद और 'नाग' के लिए एन.आर. अय्यर को चुना। दो और नौजवानों—वी.के. सारस्वत एवं ए.के. कपूर को क्रमशः सुंदरम तथा मोहन का सहायक नियुक्त किया गया।

उन दिनों डी.आर.डी.एल. कोई ऐसा मंच नहीं था जहाँ सामान्य महत्त्व के मुद्दों पर खुली चर्चा एवं सार्थक बहस हो सके। यह याद रखा जाना चाहिए कि वैज्ञानिक बुनियादी रूप से भावनात्मक अतिरेक से ग्रस्त व्यक्ति होते हैं। एक बार जब वे ठोकर खा जाते हैं तो उनके लिए अपने आपको उससे उबारना काफी मुश्किल होता है। किसी भी पेशे अथवा व्यवसाय में झटके एवं असंतोष तो हमेशा लगते रहते हैं—और विज्ञान के क्षेत्र में तो थोड़े ज्यादा ही। हालाँकि मैंने कभी नहीं चाहा कि मेरे किसी भी वैज्ञानिक साथी को असंतोष का सामना करना पड़े, जिससे कि उसे प्रतिकूल नकारात्मक फैसले लेने पड़ें। इस तरह की संभाव्य घटनाओं को टालने के लिए एक विज्ञान परिषद् का गठन किया गया, जो कि एक पंचायत जैसी

ही थी। इसमें वैज्ञानिक आपस में मिल-बैठकर ही फैसले लेते। हर तीसरे महीने सभी वैज्ञानिक—कनिष्ठ एवं वरिष्ठ, मशहूर व नए—साथ बैठते और मन के गुबार निकाल लेते।

परिषद् की पहली बैठक बहुत ही धुआँधार रही थी। थोड़ी देर तक बेसब्री से पूछे सवाल-जवाब और अविश्वास-संदेह व्यक्त करने के बाद एक वरिष्ठ वैज्ञानिक एम.एन. राव ने सीधा एक सवाल दागा—'किस आधार पर आपने इन पाँच पांडवों को चुना है (उनका मतलब परियोजना निदेशकों से था)?' मैं वाकई यह प्रश्न पूछे जाने की उम्मीद कर रहा था। मैंने उन्हें बताना चाहा कि इन पाँचों पांडवों का सकारात्मक सोचवाली द्रौपदी से विवाह करा दिया है। बजाय इसके मैंने राव को भविष्य में विश्वास करने को कहा। मैंने कहा, 'मैंने इन पाँचों परियोजना निदेशकों को सिर्फ आज के लिए ही नहीं चुना, मैंने इन्हें दीर्घ अवधि कार्यक्रम के लिए जिम्मा सौंपा है, जहाँ रोजाना नए-नए तूफान आएँगे।'

मैंने राव से कहा, 'आनेवाला हर कल इन जैसे उत्साही लोगों—अग्रवाल, प्रह्लाद, अय्यर व सारस्वत को नए-नए लक्ष्य हासिल करने और अपने लक्ष्य के प्रति वचनबद्ध रहने के लिए अवसर देता है।'

उत्पादनकारी नेता क्या-क्या करता है? मेरी राय में एक उत्पादनकारी नेता को स्टाफ के मामले में बहुत ही दक्ष होना चाहिए। नेता को संगठन के भीतर नियमित रूप से नया खून प्रवाहित करते रहना चाहिए। पेचीदगियों, समस्याओं से निबटने और नई अवधारणाओं को समझने की क्षमता भी उसमें होनी चाहिए। इस तरह जटिलताओं को दूर करने के लिए क्या कितना सही है, कितना गलत का आशु विश्लेषण ही एक महत्त्वपूर्ण साधन है। नेता में यह क्षमता भी होनी चाहिए कि वह अपनी टीम के भीतर जोश भर सके। उसे संगठन के माहौल को उत्साहवर्धक बनाए रखना चाहिए और उसके सारे कार्यों से 'किया जा सकता है का दृष्टिकोण' बयान होना चाहिए। उसे निष्पक्ष रूप से समुचित श्रेय एवं इनाम देना चाहिए, सार्वजनिक प्रशंसा करनी चाहिए, लेकिन आलोचना निजी रूप से करनी चाहिए।

एक नौजवान वैज्ञानिक की ओर से एक बहुत ही मुश्किल प्रश्न आया—'आप इन परियोजनाओं को डेविल की तरह होने से कैसे रोकने जा रहे हैं?' मैंने उसे आई.जी.एम.डी.पी. के पीछे काम से लेकर उसे तैनात करने तक का जो दर्शन था वह स्पष्ट किया। डिजाइन की शुरुआत से ही उत्पादन केंद्रों एवं उपयोगकर्ता एजेंसियों की जो भागीदारी पक्की कर दी गई थी और मिसाइल प्रणालियाँ सफलतापूर्वक युद्धक्षेत्र में तैनात हो जाने तक किसीका भी पीछे हटने का सवाल

ही नहीं था।

जब टीमों के गठन की प्रक्रिया और कार्य आयोजन का काम पूरा हुआ तब मुझे अतिरिक्त कर्मचारी एवं आई.जी.एम.डी.पी. के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए जरूरी सुविधाएँ जुटाने की जरूरत महसूस हुई। मैंने पाया कि आई.जी.एम.डी.पी. की बढ़ती जरूरतों के हिसाब से डी.आर.डी.एल. में जगह काफी कम पड़ेगी। कुछ सुविधाएँ पास की जगह पर विकसित की जा सकती हैं। मिसाइल संयोजन एवं चेकआउट सुविधा, जो डेविल के दौरान तैयार की गई थी, एक सौ बीस वर्गमीटर के शेड में सीमित थी। जहाँ पाँचों मिसाइलों के संयोजन के लिए जगह एवं सुविधाएँ हैं, वे क्या यहाँ संयोजन के लिए जल्दी से लाई जा सकेंगी? पर्यावरणीय परीक्षण सुविधा एवं एवियोनिक्स लेबोरेटरी भी खस्ता हाल में ही थी।

मैंने पास के इमारत कँचा इलाके का दौरा किया। इस क्षेत्र को डी.आर.डी.एल. ने दशकों पूर्व टैंक भेदी मिसाइलों के परीक्षण के लिए टेस्ट रेंज के रूप में विकसित किया था। यह क्षेत्र एकदम बंजर था। मुश्किल से कोई इक्के-दुक्के पेड़ वहाँ थे और था बड़े-बड़े गोल पत्थर चिह्नों के रूप में एक बड़ा पठार। मैंने यहाँ मिसाइल परियोजना के लिए मिसाइल संयोजन एवं चेकआउट सुविधाएँ शुरू करने का फैसला किया। अगले तीन वर्षों के लिए यह मेरा मिशन बन गया।

हमने एक ऐसा उच्च टेक्नोलॉजी शोध केंद्र स्थापित करने का प्रस्ताव तैयार किया जिसमें अत्याधुनिक तकनीकी सुविधाएँ उपलब्ध हों; जैसे—इनर्शियल इंस्ट्रूमेंटेशन लेबोरेटरी, फुल-स्केल एनवॉयरोमेंटल एंड इलेक्ट्रॉनिक वार फेअर (ई.एम.आई./ई.एम.सी.) टेस्ट फैसेलिटीज, एक कंपोजिट प्रोडक्शन सेंटर, हाई एनथेल्पी फैसेलिटी तथा मिसाइल संयोजन एवं चेकआउट सेंटर। किसी भी तरह से यह एक बहुत ही विशालकाय कार्य था। इस परियोजना को साकार बनाने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों के विशेषज्ञों की जरूरत थी। लक्ष्य हम पहले ही निर्धारित कर चुके थे। अब विशेषज्ञों को समस्याएँ हल करते हुए एवं संवाद प्रक्रिया जारी रखते हुए विभिन्न एजेंसियों के लोगों के साथ समझ और भागीदारी विकसित करनी थी, जो कि टीम के नेता को करनी चाहिए। ऐसा काम करने के लिए कौन उपयुक्त व्यक्ति होगा? मैंने देखा कि नेतृत्व के ये सारे गुण एम.वी. सूर्यकांता राव में हैं। फिर जब आर.सी.आई. के सृजन में बड़ी संख्या में एजेंसियाँ भागीदार बनेंगी, किसीको तो श्रेणीबद्धता की बारीकी का ध्यान रखना ही था। मैंने कृष्णा मोहन को, जो जीवन के तीसरे दशक के मध्य में थे, सूर्यकांता राव के पूरक के तौर

पर चुना। वे उस समय पाँचवें दशक के उत्तरार्ध में चल रहे थे। कृष्णा मोहन लोगों के कार्यस्थलों पर उनकी निगरानी करने के बजाय उनकी भागीदारी एवं उत्साह को बढ़ानेवाले थे।

निर्धारित प्रक्रियाओं के अनुसार आर.सी.आई. के निर्माण कार्य के लिए हमने मिलिटरी इंजीनियरिंग सर्विसेज (एम.ई.एस.) वालों से संपर्क किया। उन्होंने इस काम को पूरा करने के लिए पाँच साल का समय माँगा। रक्षा मंत्रालय में इसपर गहराई से विचार किया गया और महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते हुए रक्षा ढाँचे के निर्माण की जिम्मेदारी किसी बाहरी कंपनी को सौंपने का फैसला लिया गया। नक्शे की जाँच तथा इमरात कैंचा के हवाई चित्र प्राप्त करने के लिए सर्वेक्षण विभाग एवं नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी के साथ संपर्क स्थापित किया गया, ताकि सड़कों और दूसरे सुविधा केंद्र स्थापित करने के लिए जगह की तैयारी की जा सके। सेंट्रल ग्राउंड वाटर बोर्ड ने इन पठारी पत्थरों के बीच से पानी निकालने के लिए बीस जगहों को चुना। प्रतिदिन चालीस एम.वी.ए. बिजली और पचास लाख लीटर पानी दिए जाने के लिए बुनियादी ढाँचा खड़ा करने की योजना बनाई गई।

इसी समय कर्नल एस.के. सलवान भी हमारे साथ आ गए थे। वह एक मैकेनिकल इंजीनियर थे और अपार ऊर्जा से सराबोर थे। निर्माण के अंतिम चरण में सलवान ने पत्थरों के बीच एक प्राचीन पूजास्थल भी खोज निकाला। क्या इस जगह से आशीर्वाद मिला था? मैं आश्चर्यचकित था। तब तक हम मिसाइल प्रणालियों के विकास और उनके संयोजन पर काम पहले से ही शुरू कर चुके थे। इसके बाद अगला महत्त्वपूर्ण कदम मिसाइल उड़ान परीक्षणों के लिए उपयुक्त स्थल की तलाश का था। श्रीहरिकोटा के भी आंध्र प्रदेश में ही होने के कारण पूरे पूर्वी तटीय क्षेत्र में उपयुक्त स्थान तलाशा गया और अंत में उड़ीसा के बालासोर में यह तलाश खत्म हुई। नेशनल टेस्ट रेंज के लिए उत्तर-पूर्वी तटीय क्षेत्र के किनारे जगह तय की गई। दुर्भाग्य से इस पूरी परियोजना पर पानी-सा फिर गया; क्योंकि उस इलाके में रह रहे लोगों को हटाने की बात हमने उड़ीसा के बालासोर में ही चाँदीपुर में प्रूफ एक्सपेरिमेंटल इस्टेब्लिशमेंट (पी.एक्स.ई.) के पास ही परीक्षण के लिए अंतरिम बुनियादी ढाँचा तैयार करने का फैसला किया। इस अंतरिम टेस्ट रेंज के निर्माण के लिए तीस करोड़ रुपए खर्च किए गए।

कम लागत के इलेक्ट्रो-ऑप्टीकल ट्रैकिंग इंस्ट्रूमेंट्स तैयार करने में डॉ. एच.एस. रामराव और उनकी टीम ने बहुत ही उत्कृष्ट काम किया। इन उपकरणों में पाथ दूरबीन प्रणाली (ट्रैकिंग टेलीस्कोप सिस्टम) और पाथ राडार थे। लेफ्टिनेंट जनरल

आर.एस. देसवाल और मेजर जनरल के.एन. सिंह ने लॉञ्च पैड एवं रेंज के बुनियादी ढाँचे को विकसित करने का काम सँभाला। चाँदीपुर में बहुत ही खूबसूरत पक्षी अभयारण्य था। मैंने इंजीनियरों से कह दिया था कि पक्षी अभयारण्य को छेड़े बिना ही इस परीक्षण रेंज स्थल को तैयार किया जाए।

आर.सी.आई. को खड़ा करना शायद मेरे लिए सबसे सुखद अनुभव था। मिसाइल टेक्नोलॉजी के इस सर्वोत्कृष्ट केंद्र को विकसित करने का काम एक ऐसा आनंद देनेवाला था जैसे कुम्हार को मिट्टी के बरतन को सुंदर बनाने के लिए अंतिम रूप देने में आता है।

रक्षामंत्री आर. वेंकटरामन खुद आई.जी.एम.डी.पी. की गतिविधियों की जानकारी लेने के लिए सितंबर 1983 में डी.आर.डी.एल. आए। उन्होंने हमसे कहा कि लक्ष्यों को हासिल करने के लिए जिन संसाधनों की भी जरूरत हो उनकी सूची बनाकर दी जाए। 'जो तुमने सोचा है, वह साकार हो जाएगा। जो तुमने ठान लिया है, उसे तुम हासिल कर लोगे।' उन्होंने कहा। हम दोनों—डॉ. अरुणाचलम और मैं—को लगा कि आई.जी.एम.डी.पी. के सामने तो अपार संभावनाएँ हैं—और हमारे उत्साह ने इस संभावना को और बढ़ा दिया था। हम यह देखकर बहुत ही उत्साहित एवं रोमांचित थे कि आई.जी.एम.डी.पी. के मिशन में देश के शीर्षस्थ और विलक्षण लोग हमारे साथ थे। विजयी के साथ कौन नहीं जुड़ना चाहेगा? चारों ओर यही कहा जा रहा था कि आई.जी.एम.डी.पी. का जन्म सफलता के लिए ही हुआ था।

□

: बारह :

3 जनवरी की शाम बंबई से जब डॉ. ब्रह्मप्रकाश के निधन की खबर आई, उस समय सन् 1984 के लक्ष्यों को लेकर हमारी मीटिंग चल रही थी। यह मेरे लिए एक बहुत बड़ी भावनात्मक क्षति थी; क्योंकि मैंने अपने जीवन का सबसे चुनौती भरा समय उनके साथ काम करने में बिताया था। उनके भीतर जो मानवता थी, वह अनुकरणीय तथा अपने में एक मिसाल थी। जिस दिन एस.एल.वी.-ई. 1 की उड़ान असफल रही थी और उन्होंने जिस तरह मुझे सांत्वना दी थी, उस याद ने मेरे दुःख को और गहरा कर दिया।

अगर प्रो. साराभाई वी.एस.एस.सी. को स्थापित करनेवाले थे तो डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने उनके इस काम को आगे बढ़ाया और साकार किया। जब इस संस्थान को आगे बढ़ाने की सबसे ज्यादा जरूरत थी तब उन्होंने ही इसे पाला-पोसा था। मेरे नेतृत्व कौशल को आकार देने में डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनकी नम्रता ने मुझे विनम्र बनाया और आक्रामक रवैया छुड़ाने में मेरी मदद की। उनकी नम्रता सिर्फ उनकी प्रतिभा या विशिष्टता में ही नहीं छिपी थी बल्कि उनके साथ काम करनेवालों की गरिमा के प्रति भी थी। डॉ. ब्रह्मप्रकाश स्वाभाविक रूप से बुद्धिजीवी थे। उनमें एक प्रकार की बाल सुलभता थी और मैंने उन्हें हमेशा वैज्ञानिकों के बीच एक संत के रूप में देखा।

डी.आर.डी.एल. के पुनर्जागरण काल के दौरान पी. बनर्जी, के.वी. रमणा साई और उनकी टीम द्वारा विकसित किया गया एटीच्यूड कंट्रोल सिस्टम तथा ऑन बोर्ड कंप्यूटर अब तैयार होने जा रहा था। किसी भी स्वदेशी मिसाइल विकास कार्यक्रम के लिए यह सफल कोशिश एक ठोस उपलब्धि थी। ठीक इसी समय इस महत्त्वपूर्ण प्रणाली के परीक्षण के लिए हमें मिसाइल चाहिए थी।

कई दौर की उन्मादी बैठकों के बाद हमने इस परीक्षण के लिए डेविल मिसाइल को ही कामचलाऊ तौर पर लेने का फैसला किया। एक डेविल मिसाइल

को खोलकर उसके हिस्से अलग-अलग किए गए। फिर उनमें कई सुधार किए गए, उपप्रणालियों के व्यापक परीक्षण किए गए और मिसाइल चेकआउट प्रणाली को पुनर्विन्यासित किया गया। कामचलाऊ लॉञ्चर लगाने के बाद संशोधित भूमिका और विस्तारित रेंजवाली मिसाइल पहले स्वदेशी स्ट्रैप डाउन-इनर्शियल गाइडेंस सिस्टम के परीक्षण के लिए 26 जून, 1984 को दागी गई। भारतीय मिसाइल विकास के इतिहास में यह पहला और बहुत ही महत्त्वपूर्ण कदम था। लंबे समय से जो अवसर नहीं आया था, आखिरकार अब डी.आर.डी.एल. के वैज्ञानिकों ने उसका उपयोग किया था। प्रत्येक के लिए संदेश बिलकुल स्पष्ट था—'हम यह कर सकते हैं।'

दिल्ली तक यह संदेश पहुँचने में कोई बहुत समय नहीं लगा। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आई.जी.एम.डी.पी. की प्रगति खुद आकर देखने की इच्छा व्यक्त की। हम उत्साह एवं जोश से भर गए थे। हर कोई अपना अच्छे-से-अच्छा काम करना चाह रहा था। पूरा संगठन रोमांचित हो उठा था। 19 जुलाई, 1984 को श्रीमती गांधी डी.आर.डी.एल. आईं।

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी में गर्व की भावना बड़ी उदात्त थी। उन्हें अपने पर, अपने काम पर और अपने देश पर बहुत ही गर्व था। मुझे लगा कि डी.आर.डी.एल. में उनका आना एक सम्माननीय बात है; जैसे उनके गर्व का कुछ अंश मेरे दूसरे कामों में लगे दिमाग में आ गया हो। वह इस बात के प्रति अत्यधिक सचेत रहती थीं कि वह अस्सी करोड़ लोगों की नेता थीं। उनका हर कदम, हर इशारा, उनके हाथों की हर मुद्रा—सब अपने में अनूठा था। उन्होंने जिस श्रद्धा एवं सम्मान से हमारे गाइडेड मिसाइल के काम को देखा उसने हमारा नैतिक बल बहुत बढ़ा दिया।

डी.आर.डी.एल. में अपने एक घंटे के दौरान उन्होंने आई.जी.एम.डी.पी. के तमाम व्यापक पहलुओं को देखा, उड़ान प्रणाली तैयार करने से लेकर बहुविध विकास प्रयोगशालाएँ देखीं। अंत में उन्होंने डी.आर.डी.एल. परिवार के दो हजार लोगों को संबोधित किया। उन्होंने हमसे उस उड़ान परीक्षण कार्यक्रम के बारे में पूछा जिसपर हम काम कर रहे थे। 'आप 'पृथ्वी' का उड़ान परीक्षण कब करने जा रहे हैं?' श्रीमती गांधी ने पूछा। मैंने बताया—'जून 1987।' उन्होंने फौरन पलट कर कहा, 'मुझे बताइए, उड़ान कार्यक्रम को और तेज करने के लिए क्या-क्या जरूरतें हैं?' वह जल्दी से वैज्ञानिक एवं तकनीकी नतीजे चाहती थीं। 'आपके काम की तेज गति पूरे राष्ट्र की उम्मीद है।' श्रीमती गांधी ने कहा। उन्होंने मुझसे भी कहा कि आई.जी.एम.डी.पी. न केवल समय पर पूरा होना चाहिए बल्कि पूरी

प्रतिभा और अनूठेपन के साथ भी। 'जो आप हासिल करते हैं बात वह नहीं है, आपको कभी भी पूरी तरह संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए और हमेशा अपने आपको श्रेष्ठ साबित करने के रास्ते तलाशने चाहिए।' उन्होंने कहा। एक महीने के भीतर ही उन्होंने नवनियुक्त रक्षामंत्री एस.बी. चह्वाण को हमारी परियोजनाओं की समीक्षा करने के लिए भेजकर अपनी रुचि एवं समर्थन दिखाया। श्रीमती गांधी ने परियोजना को लेकर जो कदम उठाए थे, वे न सिर्फ प्रभावित करनेवाले थे बल्कि असरदार भी थे। हमारे देश में आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के अनुसंधान एवं विकास से जुड़ा हर व्यक्ति जानता है कि श्रेष्ठता का ही पर्याय है आई.जी.एम.डी.पी.।

हमने देश में असरदार प्रबंधन तकनीकों का भी विकास किया। ऐसी ही एक तकनीक परियोजना कार्य की समीक्षा एवं उसकी प्रगति के मूल्यांकन से संबंधित थी। परियोजना के कामकाज को आगे बढ़ाने से संबंधित कठिनाइयों और रुकावटों के समाधान में तकनीकी विश्लेषण एवं प्रक्रियागत व्यावहारिकता की भूमिका प्रमुख होती है। कार्य केंद्रों में परियोजना के कार्य, समय एवं खर्च के अनुमानों का प्रगति के हर चरण में परीक्षण किया जाता है, साथियों के साथ विचार-विमर्श किया जाता है और फिर प्रत्येक के समर्थन से इसे लागू किया जाता है। कार्य केंद्रों में से बड़ी संख्या में मौलिक विचार निकलकर आते हैं। अगर आप मुझसे इस सफल कार्यक्रम का एक सबसे महत्त्वपूर्ण प्रबंधकीय कौशल बताने को कहें तो मैं कहूँगा कि निरंतर सक्रिय ढंग से काम को आगे बढ़ाकर, डिजाइन पर विभिन्न प्रयोगशालाओं में हुए काम से, योजना बनाकर, सेवाओं को उत्कृष्ट बनाकर और निगरानी एजेंसियों एवं शिक्षण संस्थानों के माध्यम से सबसे ज्यादा सद्भावपूर्ण तरीके से तेज प्रगति की जा सकती है। दरअसल गाइडेड मिसाइल प्रोग्राम ऑफिस में हमने कार्यसंहिता बना रखी थी—यदि आपको किसी कार्य केंद्र को पत्र लिखना है तो फैक्स भेजिए, यदि आपको टेलेक्स या फैक्स भेजने की जरूरत है तो टेलीफोन कर लीजिए और यदि टेलीफोन पर ही कोई विचार-विमर्श करना हो तो उस जगह जाकर व्यक्तिगत रूप से मिलिए।

हमारे समक्ष कामकाज का यह तरीका उस वक्त सामने आया जब 27 सितंबर, 1984 को डॉ. अरुणाचलम आई.जी.एम.डी.पी. की समीक्षा करने आए। डी.आर.डी.ओ. की प्रयोगशालाओं, इसरो, अकादमिक संस्थानों और उत्पादन एजेंसियों के विशेषज्ञ परियोजना की प्रगति तथा इसे लागू करने के पहले साल में आई कठिनाइयों की आलोचनात्मक समीक्षा करने के लिए इकट्ठे हुए थे। इस समीक्षा के दौरान इमारत कैंचा में सुविधाएँ विकसित करने और परीक्षण सुविधा के लिए

केंद्र बनाने जैसे बड़े फैसले लिये गए। इमारत कँचा में भविष्य में तैयार होनेवाली ढाँचागत सुविधाओं के केंद्र को रिसर्च सेंटर इमारत (आर.सी.आई.) नाम दिया गया और बाकी स्थानों की मूल पहचान ही बने रहने दी गई।

समीक्षा बोर्ड में पुराने परिचित टी.एन. शेषन का होना एक सुखद बात थी। एस.एल.वी.-3 से लेकर अब तक हमारे बीच काफी स्नेह हो गया था। इस समय शेषन रक्षा सचिव थे। परियोजना के कार्यक्रमों और वित्तीय स्थितियों की व्यवहार्यता के बारे में उनके द्वारा उठाए गए सवाल काफी ज्यादा तर्कसंगत थे। शेषन एक ऐसे व्यक्ति हैं जो संवादों से अपने विरोधियों को भी करीब ले आते हैं और आनंद लेते हैं। पर अपने आक्रामक हास्य-विनोद से वह अपने विरोधियों को उपहास का पात्र भी बना देते। यद्यपि कई मौकों पर वह जोरदार बहस करते, पर अंत में कोई भी रास्ता या हल निकालने के लिए हमेशा उपलब्ध संसाधनों के उपयोग की अधिकतम संभावना को इस प्रकार सुनिश्चित करते जो संबंधित कार्य में लागू किए जा सकते हों। निजी स्तर पर शेषन बहुत ही दयालु और दूसरे का ध्यान रखनेवाले व्यक्ति हैं। आई.जी.एम.डी.पी. में प्रयोग में लाई गई टेक्नोलॉजी के बारे में उनके द्वारा पूछे गए सवालों का जवाब देकर मेरी टीम बहुत ही खुश थी। कार्बन-कार्बन सम्मिश्रों (कंपोजिट्स) के स्वदेशी विकास के बारे में जानने की जो उत्सुकता उनमें मैंने देखी थी, वह मुझे अभी तक याद है। और एक बहुत ही छोटी सी गोपनीय बात मैं आपको बता दूँ—शायद दुनिया में शेषन ही सिर्फ ऐसे व्यक्ति हैं जो मुझे पूरा नाम, जिसमें इकतीस अक्षर हैं, लेकर बुलाने में मजा लेते हैं—अबुल पकीर जैनुलाबदीन अब्दुल कलाम।

मिसाइल कार्यक्रम भी साथ-साथ चल रहा था और इसके डिजाइन, विकास एवं उत्पादन के काम में बारह अकादमिक संस्थान, डी.आर.डी.ओ. की तीस प्रयोगशालाएँ, काउंसिल फॉर साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च (सी.एस.आई.आर.), इसरो और दूसरे उद्योग लगे हुए थे। पचास से ज्यादा प्रोफेसर और सौ शोधकर्ता मिसाइल से संबंधित समस्यों पर अपनी-अपनी प्रयोगशालाओं में काम कर रहे थे। एक साल के भीतर ही इस तरह की भागीदारी से काम की जो गुणवत्ता सामने आई, उससे मेरे मन में यह पक्का विश्वास हो गया कि देश में किसी भी तरह का विकास कार्य हम तय समय शुरू करके इसे पूरा कर सकते हैं। इस समीक्षा के चार महीने पहले, मेरा मानना है कि यह अप्रैल-जून 1984 था, मिसाइल कार्यक्रम में लगे हममें से छह लोगों ने अकादमिक संस्थानों के दौरे किए थे और उन नौजवान स्नातकों की सूची बनाई थी जिन्होंने इस कार्यक्रम में शामिल

होने का वायदा किया था। हमने प्रोफेसरों और इच्छुक छात्रों के समक्ष मिसाइल कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की। इनमें से करीब तीन सौ पचास छात्रों ने इस कार्यक्रम में भाग लेने के लिए आवेदन किया। मैंने कार्यक्रम के समीक्षकों को सूचित किया कि हमें अपनी प्रयोगशालाओं में करीब तीन सौ नौजवान इंजीनियरों के शामिल होने की उम्मीद है।

नेशनल एयरोनॉटिकल लेबोरेटरी के उस समय के निदेशक रोडम नरसिम्हा ने इस समीक्षा काल के दौरान टेक्नोलॉजी के पहल की बात को बहुत ही पुरजोर तरीके से रखा। उन्होंने हरित क्रांति के अनुभवों का हवाला दिया, जिसने यह साबित कर दिया था कि बड़ी तकनीकी चुनौतियों का सामना करने के लिए देश में पर्याप्त प्रतिभा है।

जब भारत ने शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए पहला परमाणु परीक्षण किया था तब हमने अपने आपको दुनिया के उन छह देशों में शामिल कर लिया था जो परमाणु हथियार क्षमता से लैस थे। जब हमने एस.एल.वी.-3 छोड़ा तो भारत उपग्रह प्रक्षेपण क्षमता हासिल कर लेनेवाला दुनिया का पाँचवाँ देश बन गया। तो फिर हम टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में असाधारण उपलब्धियाँ हासिल करनेवाले दुनिया के पहले या दूसरे देश कब बनेंगे? मैं 'पाँचवें देश का पट्टा' उतारकर 'पहले देश' का ताज पहनने के आह्वान के रूप में युवाओं से प्रायः कहा करता हूँ।

समीक्षा करने आए सदस्यों की सलाह एवं संदेहों को मैंने ध्यानपूर्वक सुना और उन सबकी सामूहिक बौद्धिक सोच से मैं बहुत ही लाभान्वित हुआ। सचमुच मेरे लिए यह बहुत ही बड़ी शिक्षा थी। पूरे स्कूली जीवन में हमें पढ़ने-लिखने व बोलने को कहा गया, लेकिन सुनने के लिए कभी नहीं कहा गया। और ठीक वैसी ही स्थिति आज भी है। पारंपरिक रूप से भारतीय वैज्ञानिक बहुत ही अच्छे वक्ता हुए हैं; लेकिन साथ ही सुनने की कला उनमें पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो पाई है। हमने एक भद्र श्रोता बनने का संकल्प किया। क्या ढाँचे को कामकाजी उपयोगिता की नींव पर खड़ा नहीं किया जाता है? क्या तकनीकी जानकारी इसकी ईंटों का निर्माण नहीं करती?

जब श्रीमती गांधी की हत्या की खबर आई, उस वक्त हम उस कार्य योजना पर काम कर रहे थे, जो पिछले पूर्व महीनों की समीक्षा के बाद तैयार की गई थी। इसके बाद देश भर में हिंसा एवं दंगों की खबरें फैलीं। हैदराबाद शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया था। हमने अपने चार्ट समेटे और टेबल पर शहर का नक्शा रखा, ताकि लोगों को सुरक्षित घर भेजने का बंदोबस्त किया जा सके। एक घंटे से भी

...में पूरी प्रयोगशाला सुनसान नजर आ रही थी। मैं अकेला अपने दफ्तर में बैठा था। श्रीमती गांधी की हत्या की परिस्थितियाँ बहुत ही अनिष्टसूचक थीं। तीन महीने पहले ही उनकी डी.आर.डी.एल. की यात्रा की यादों ने मेरा दुःख और बढ़ा दिया था। महान् लोगों का ऐसा खौफनाक अंत क्यों होना चाहिए? ऐसे ही एक मौके में मेरे पिताजी द्वारा किसीको कही एक बात मुझे याद आ गई—'अच्छे और बुरे लोग सूरज के नीचे ठीक उसी तरह रहते हैं जैसे किसी एक कपड़े में काले व सफेद धागे को साथ बुना जाता है। लेकिन इनमें से जब या तो एक काला धागा टूट जाए या फिर सफेद धागा, तो जुलाहे को पूरे कपड़े को देखना होगा और साथ ही उस करघा भी देखना पड़ेगा।' जब मैं प्रयोगशाला से बाहर आया तो सड़क पर एक भी आदमी नजर नहीं आ रहा था। मैं करघे के टूटे हुए धागे के बारे में सोचता रहा।

श्रीमती गांधी की हत्या से वैज्ञानिक समुदाय को बहुत बड़ा नुकसान हुआ था। उन्होंने देश में वैज्ञानिक शोध को काफी प्रोत्साहन दिया था। लेकिन भारत एक बहुत ही लचीला देश है। यह धीरे-धीरे श्रीमती गांधी की हत्या के सदमे को भूल गया। उनके बेटे राजीव गांधी ने भारत के नए प्रधानमंत्री का पद सँभाला। वह चुनाव मैदान में उतरे और देश को श्रीमती गांधी की नीतियों पर आगे बढ़ाने के लिए लोगों ने उन्हें पूर्ण बहुमत दिया। आई.एम.जी.डी.पी. भी श्रीमती गांधी की नीतियों में से एक था।

सन् 1985 की गरमियों तक इमारत कँचा में मिसाइल टेक्नोलॉजी रिसर्च सेंटर के भवन निर्माण के लिए सारा बुनियादी काम पूरा हो चुका था। प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 3 अगस्त, 1985 को रिसर्च सेंटर इमारत (आर.सी.आई.) की नींव रखी। हमारी इस प्रगति को देखकर वह काफी खुश नजर आ रहे थे। उनमें एक बाल सुलभ उत्सुकता थी, जो बहुत ही चित्ताकर्षक लग रही थी। उनकी माँ ने एक साल पहले डी.आर.डी.एल. की यात्रा के दौरान जो धैर्य एवं संकल्प दिखाया था, यद्यपि इसमें थोड़ा सा फर्क था। श्रीमती गांधी का व्यक्तित्व एक कठोर अधिकारी की तरह था; जबकि राजीव गांधी का व्यक्तित्व करिश्माई था, जो किसीको भी मोह लेता था। डी.आर.डी.एल. परिवार से उन्होंने कहा कि 'मैंने भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा उठाई गई कठिनाइयों-तकलीफों को महसूस किया है।' उन्होंने उन लोगों के प्रति सम्मान व्यक्त किया जिन्होंने देश से बाहर जाकर अपना भविष्य बनाने के बजाय अपने देश में रहकर ही काम करने को अपना रास्ता चुना। उन्होंने कहा कि कोई भी इस तरह के काम पर एकाग्रता से तब तक ध्यान नहीं लगा सकता जब तक कि वह दैनिक जीवन की बुनियादी जरूरतों के दबाव से मुक्त नहीं हो जाता।

राजीव गांधी ने हमें विश्वास दिलाया कि वैज्ञानिकों के जीवन को और अच्छा बनाने के लिए जो भी जरूरत होगी, पूरी की जाएगी।

राजीव गांधी की यात्रा के हफ्ते-भर के भीतर ही मैं डॉ. अरुणाचलम के साथ अमेरिकी वायुसेना के निमंत्रण पर अमेरिका गया। नेशनल एयरोनॉटिकल लेबोरेटरी के रोडम नरसिम्हा व एच.ए.एल. के के.के. गंगापति भी हमारे साथ थे। वाशिंगटन में पेंटागन में अपना काम खत्म करने के बाद हम लॉस एंजिल्स जाते समय सानफ्रांसिस्को उतर गए। यहाँ हमें नॉरथ्रोप कॉर्पोरेशन देखना था। इस अवसर का उपयोग मैंने क्रिस्टल कैथेड्रेल देखने जाने में भी कर लिया। क्रिस्टल कैथेड्रेल मेरे प्रिय लेखक रॉबर्ट शुलर ने बनवाया था—पूर्णतया रो कॉच से निर्मित। इसकी भव्यता देखकर मैं चकित रह गया था। यह तारे की शक्ल में चार बिंदुओं पर टिकी एक ऐसी भव्य आकृति थी जिसमें एक बिंदु की दूसरे बिंदु से दूरी चार सौ फीट से ज्यादा थी। इसकी सौ फीट लंबी काँच की जो छत थी उसे देखकर लगता था जैसे वह अंतरिक्ष में तैर रही हो। इसके निर्माण में लाखों डॉलर खर्च हुए थे और यह राशि शुलर ने ही लोगों से दान माँगकर जुटाई थी। 'व्यक्ति के माध्यम से ईश्वर ऐसी बड़ी-बड़ी चीजें कर लेता है। सच्चा कर्मयोगी यह परवाह नहीं करता कि काम का श्रेय कौन ले जाता है। अहंकार को छोड़ देना चाहिए।' शुलर लिखते हैं। मैंने शुलर के चर्च में ईश्वर से प्रार्थना की कि इसरत काँचा में रिसर्च सेंटर बनाने में मेरी मदद करें, जो कि मेरा क्रिस्टल कैथेड्रेल था।

□

: तेरह :

पूरे दो सौ अस्सी नौजवान इंजीनियरों ने डी.आर.डी.एल. की गति ही बदल डाली थी। यह हम सबके लिए बहुत ही बहुमूल्य अनुभव था। नौजवानों की इन टीमों के अनवरत परिश्रम से अब हम इस स्थिति में आ गए थे कि रि-एंट्री टेक्नोलॉजी एवं स्ट्रक्चर, मिलिमैट्रिक वेव राडार, ऐरी राडार, रॉकेट प्रणालियों और ऐसे ही दूसरे उपकरण विकसित कर सकते थे। जब हमने पहली बार इन वैज्ञानिकों को ये काम सौंपे तो वे पूरी तरह से अपने काम की महत्ता को समझ नहीं पाए। एक बार तो वे अपने भीतर शिक्षा को बोझ समझ बेचैनी महसूस करने लगे थे। मुझे अब तक याद है, एक नौजवान व्यक्ति ने मुझसे कहा, 'हमारी टीम में कोई बड़ी हस्ती तो है नहीं, हम कैसे अपने काम को अंजाम दे पाएँगे?' मैंने उससे कहा, 'एक बड़ी हस्ती तो वह छोटा सा व्यक्ति है, जो अपने बड़े लक्ष्य पर ध्यान रखे हुए है और उसे करने की कोशिश कर रहा है।' यह देखकर बहुत ही आश्चर्य हो रहा था कि उन नौजवान वैज्ञानिकों में जो नकारात्मक दृष्टिकोण घर कर गया था वह कैसे सकारात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तित होता गया और जो पहले अव्यावहारिक लग रहा है, वह सब अब व्यावहारिक रूप में सामने आ रहा था। बड़ी रोचक बात थी कि कई पुराने वैज्ञानिक, पके हुए पुरोधा, भी इन नौजवानों की टीम का हिस्सा बनते जा रहे थे।

यह मेरा निजी अनुभव रहा है कि काम खत्म करने या उसके हो चुकने के बजाय काम जारी रहने में ही असली आनंद, रोमांच की अनुभूति होती है। मैं जीवन में सफलतापूर्ण निष्कर्षों के लिए इन चार बुनियादी पहलुओं को जरूरी मानता हूँ—लक्ष्य निर्धारण, सकारात्मक सोच, मन में स्पष्ट कल्पना करना और उसपर विश्वास करना।

अब तक हम अपने निर्धारित लक्ष्यों की व्याख्या कर चुके थे और इन लक्ष्यों के बारे में एक सकारात्मक सोच के साथ अपने युवा वैज्ञानिकों को काफी उत्साहित

कर दिया था। समीक्षा बैठकों में मैं इस बात पर जोर दिया करता था कि हर टीम के सबसे ज्यादा नौजवान वैज्ञानिक को ही अपनी टीम के काम का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। इससे उन्हें पूरे काम को लेकर दृष्टि विकसित करने में मदद मिलेगी। धीरे-धीरे माहौल बनना शुरू हुआ। ठोस तकनीकी मामलों पर युवा वैज्ञानिकों ने अपने वरिष्ठ वैज्ञानिकों के साथ सवाल, राय-मशविरा आदि शुरू कर दिया। इसमें कोई भी भयभीत या निरुत्साहित नहीं होता, क्योंकि उन्हें किसीका डर नहीं था। अगर संदेह पैदा होते थे तो वे उन्हें दूर कर लेते थे। वे जल्दी ही ऊर्जावान बन गए। विश्वास से भरा व्यक्ति किसीके सामने घुटने नहीं टेकता। वरिष्ठ वैज्ञानिकों के अनुभव और उनके साथ काम करनेवाले नौजवान वैज्ञानिकों के कौशल से मैं काम के माहौल को जीवंत बनाए रखता था। युवा एवं अनुभवी वैज्ञानिकों के बीच इस सकारात्मक निर्भरता ने डी.आर.डी.एल. में कार्य की संस्कृति को उत्पादक और रचनात्मक बनाया।

मिसाइल कार्यक्रम का पहला प्रक्षेपण 16 सितंबर, 1985 को किया गया। इस दिन श्रीहरिकोटा स्थित परीक्षण रेंज से 'त्रिशूल' को छोड़ा गया। यह एक प्रक्षेपित उड़ान थी, जो कि उड़ान के दौरान ठोस ईंधन रॉकेट मोटर के परीक्षण के लिए दी गई थी। मिसाइल के पथ निर्धारण के लिए दो सी-बैंड राडार तथा कैलीडियो थियोडोलाइट (के.टी.एल.) इस्तेमाल किए गए थे। परीक्षण सफल रहा था। रॉकेट मोटर एवं टेलीमीटरी प्रणालियाँ ठीक तरह से काम कर रही थीं। विंग टनल परीक्षण के आधार पर जो अनुमान लगाए गए थे, उनकी तुलना में ऊपर की तरफ वायुगतिकीय गतिरोध ज्यादा पाया गया था। तकनीकी मायनों में हालाँकि यह एक मामूली परीक्षण था, लेकिन इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि इसने डी.आर.डी.एल. के मेरे साथियों को यह याद दिला दिया था कि वे बिना बड़ी माँगों के भी मिसाइल उड़ा सकते हैं। इस प्रकार डी.आर.डी.एल. के वैज्ञानिकों के लिए यह एक बहुआयामी अनुभव के समान था।

इसके बाद पायलटरहित लक्ष्य विमान (पी.टी.ए.) का सफल उड़ान परीक्षण किया गया। हमारे इंजीनियरों ने पी.टी.ए. के लिए रॉकेट मोटर विकसित की थी, जिसका डिजाइन बंगलौर-स्थित एयरोनॉटिकल डेवलपमेंट इस्टेब्लिशमेंट (ए.डी.ई.) ने तैयार किया था। डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) ने इसकी काफी प्रशंसा की थी। मिसाइल हार्डवेयर विकसित करने की दिशा में यह एक छोटा, लेकिन महत्त्वपूर्ण कदम था। विश्वसनीय, उड़ान योग्य, उच्च तकनीक एवं उच्च वेग-भार अनुपातवाले रॉकेट इंजन के उत्पादन के लिए एक निजी क्षेत्र की कंपनी को दायित्व सौंपा गया

जिसे डी.आर.डी.एल. की तकनीक का इस्तेमाल करके रॉकेट इंजन तैयार करना था। हम प्रयोगशाला उद्योग के लिए धीरे-धीरे एकल प्रयोगशाला परियोजनाओं से बहु प्रयोगशाला कार्यक्रमों की ओर बढ़ रहे थे। पी.टी.ए. के विकास से चार विभिन्न संगठन एक साथ आपस में जुड़े थे। मुझे लगा जैसे मैं किसी संगम पर खड़ा हूँ और ए.डी.ई., डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) और इसरो की ओर से आनेवाले रास्तों की ओर देख रहा हूँ। चौथी सड़क डी.आर.डी.एल. थी—मिसाइल टेक्नोलॉजी में देश को आत्मनिर्भरता की ओर ले जानेवाला हाइवे।

हमारे साथ देश के अकादमिक संस्थानों की भागीदारी के बाद अगला कदम हमने संयुक्त अत्याधुनिक तकनीकी कार्यक्रमों (ज्वाइंट एडवांस्ड टेकनोलॉजी प्रोग्राम) का शुरू किया। ये कार्यक्रम इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस (आई.आई.एस-सी.) और जादवपुर विश्वविद्यालय में शुरू किए। अकादमिक संस्थानों और विलक्षण शिक्षाविदों की पवित्रता के प्रति मेरे भीतर हमेशा से ही सम्मान रहा है। विकास में शिक्षाविदों के योगदान को मैं बहुत ही बहुमूल्य समझता हूँ। इन संस्थानों से इस बात के लिए औपचारिक रूप से अनुरोध किया गया और ऐसे बंदोबस्त किए गए जिससे इन संस्थानों के विशेषज्ञ डी.आर.डी.एल. में आकर अपनी परियोजनाओं पर काम कर सकें।

विभिन्न मिसाइल कार्यक्रमों में अकादमिक संस्थानों के योगदान का भी मैं यहाँ उल्लेख करूँगा। 'पृथ्वी' को एक जड़त्वीय निर्देशित मिसाइल के रूप में डिजाइन किया गया था। मिसाइल एकदम अपने सही लक्ष्य तक पहुँच सके, इसके लिए इसके कंप्यूटर में प्रक्षेप-पथ संबंधी सारे मानक एवं प्रोग्राम डाले गए थे। जादवपुर विश्वविद्यालय के युवा इंजीनियरों की एक टीम ने प्रो. घोषाल के निर्देशन में मिसाइल प्रक्षेपण के लिए निर्देशन प्रणाली तैयार की थी। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस में प्रो. आई.जी. शर्मा की देखरेख में छात्रों ने एक एयर डिफेंस सॉफ्टवेयर विकसित किया था, जो कि 'आकाश' मिसाइल के लिए था। 'अग्नि' मिसाइल के लिए रि-एंट्री व्हीकल सिस्टम डिजाइन मैथोडोलॉजी (पुनर्प्रवेश यान प्रणाली डिजाइन) आई.आई.टी., मद्रास और डी.आर.डी.ओ. के वैज्ञानिकों ने विकसित की थी। उस्मानिया विश्वविद्यालय की नेवीगेशनल इलेक्ट्रॉनिक रिसर्च एंड ट्रेनिंग यूनिट ने 'नाग' मिसाइल के लिए सिगनल प्रोसेसिंग प्रणालियाँ विकसित की थीं। सामूहिक प्रयासों की सिर्फ कुछ मिसालें ही मैंने यहाँ दी हैं। वास्तव में अगर इन अकादमिक संस्थानों की सक्रिय भागीदारी नहीं होती तो हमारे लिए लक्ष्यों को हासिल कर पाना बहुत ही मुश्किल काम था।

अब हम 'अग्नि' का उदाहरण लेते हैं। 'अग्नि' एक दो चरणोंवाली रॉकेट प्रणाली है और इसमें देश में पहली बार विकसित रि-एंट्री टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल किया गया है। इसे एस.एल.वी.-3 के प्रथम चरणवाले ठोस ईंधन रॉकेट इंजन से गति दी जाती है और फिर इसे दूसरे चरण के 'पृथ्वी' के द्रव ईंधनवाले रॉकेट इंजन से त्वरित किया जाता है। एक निश्चित ऊँचाई तक जाने के बाद 'अग्नि' में पेलोड्स बहुत ही तेज गति से पृथ्वी के वातावरण में लौटते हैं। इस समय बाहर का यानी आवरण का तापमान दो हजार पाँच सौ डिग्री सेंटीग्रेड से ज्यादा होता है। निर्देशित इलेक्ट्रॉनिक्स प्रणाली, जो पेलोड को सुरक्षित रखने के लिए रखी होती है, का अंदर का तापमान चालीस डिग्री सेंटीग्रेड से कम रखना अनिवार्य होता है। जबकि मिसाइल के कंप्यूटर की जड़त्वीय निर्देशन प्रणाली पेलोड्स को इच्छित लक्ष्य तक पहुँचाती है। किसी भी पुन:प्रवेश मिसाइल प्रणाली (रि-एंट्री मिसाइल सिस्टम) में कार्बन-कार्बन बंधन ही इतने उच्च ताप पर अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं। डी.आर.डी.ओ. और सी.एस.आई.आर. की चार प्रयोगशालाओं ने अठारह महीने के छोटे से अंतराल में ही इस तकनीक को विकसित कर लिया था; जबकि कुछ देशों को इस तकनीक को विकसित करने में एक दशक से भी ज्यादा का समय लग गया था।

अग्नि के पेलोड डिजाइन से संबंधित जो दूसरी सबसे बड़ी चुनौती थी, वह वेग को लेकर थी। इस वेग से ही वातावरण में इसका पुन:प्रवेश होता है। दरअसल 'अग्नि' वातावरण में ध्वनि की गति से बारह गुना वेग (विज्ञान की भाषा में इसे 'बारह मैक' कहते हैं) से पुन:प्रवेश करती है। हमें यह अनुभव नहीं था कि इस अत्यधिक वेग पर यान को नियंत्रण में कैसे रखा जाए। इसका परीक्षण करने के लिए हमारे पास ऐसी कोई विंड टनल नहीं थी जो इतनी तेज गति उत्पन्न कर सके। अगर हम अमेरिका से मदद लेते तो हमें उनकी आकांक्षाओं का, जिन्हें वे अपना विशेषाधिकार समझते, खयाल रखना पड़ता। अगर वे मदद के लिए राजी हो भी जाते तो विंड टनल के लिए एक निश्चित कीमत हमें देनी पड़ती, जो पूरी परियोजना की लागत से कहीं ज्यादा बैठती। अब सवाल यह था कि इस समस्या से कैसे निबटा जाए। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के प्रो. एस.एम. देशपांडे ने तरल गतिकी के क्षेत्र में काम कर रहे चार युवा वैज्ञानिकों को साथ लेकर छह महीने के भीतर कंप्यूटेशनल फ्लूड डायनेमिक्स के लिए सॉफ्टवेयर विकसित कर लिया, जो विश्व में अपनी तरह का एक था।

दूसरी बड़ी उपलब्धि मिसाइल का पथ निर्धारण करनेवाले सॉफ्टवेयर विकसित

कर लेने से संबंधित थी। 'अनुकल्पना' नाम के इस सॉफ्टवेयर को इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के प्रो. आई.जी. शर्मा ने विकसित किया था। यह सॉफ्टवेयर बहुलक्षीय क्षमताओंवाली 'आकाश' जैसी मिसाइलों के लिए था। कोई भी देश हमें इस प्रकार का सॉफ्टवेयर देना तो दूर, इसके बारे में बात करने के लिए तैयार नहीं था। यह हमने अपने देश में ही विकसित किया था।

वैज्ञानिक प्रतिभा के और भी विलक्षण लोग हमारे साथ थे। आई.आई.टी., दिल्ली की प्रो. भारती भट्ट ने सॉलिड फिजिक्स लेबोरेटरी (एस.पी.एल.) और सेंट्रल इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड के साथ काम करके कई कार्य प्रणालियों में एक साथ काम आनेवाले फेज शिफ्टर, निगरानी के लिए थ्री-डी फेज सैन्य राडार, 'आकाश' मिसाइल का पथ निर्धारण एवं निर्देशन जैसी तकनीकियाँ विकसित कीं और पश्चिमी देशों का इस प्रौद्योगिकी पर एकाधिकार खत्म कर दिया। आई.आई.टी., खड़गपुर के प्रो. सर्राफ ने प्रो. मुखोपाध्याय, जो आर.सी.आई. में मेरे साथी थे, के साथ काम करके 'नाग' मिसाइल के लिए मल्टीमीटरिक वेव (एम.एम.डब्ल्यू.) एंटीना बनाया था। यह एंटीना अंतरराष्ट्रीय मानकों के स्तर का था और दो साल के रिकॉर्ड समय में यह काम पूरा कर लिया गया था। पिलानी के सेंट्रल इलेक्ट्रिकल एंड इलेक्ट्रॉनिक्स रिसर्च इंस्टीट्यूट (सी.ई.ई.आर.आई.) ने एस.पी.एल और आर.सी.आई. के साथ मिलकर एक इंपेक्ट डायोड विकसित किया था। इसके विकास से इन उपकरणों को तैयार करने में विदेशी निर्भरता खत्म हो गई थी। यह इंपेक्ट डायोड किसी भी एम.एम.डब्ल्यू. डिवाइस के लिए 'दिल' के समान होते हैं।

जैसे-जैसे परियोजना का काम फैलता गया, कार्य निष्पादन के मूल्यांकन का काम और कठिन होता गया। डी.आर.डी.ओ. की अपनी एक मूल्यांकन नीति थी। करीब पाँच सौ वैज्ञानिकों के काम का मूल्यांकन मुझे सालाना गोपनीय रिपोर्ट (ए.सी.आर.) के रूप में करना था। फिर इन रिपोर्टों को उस बोर्ड के पास भेजा जाना था, जिसमें बाहरी विशेषज्ञ थे और उन्हें पदोन्नतियों के लिए सिफारिशें भेजनी थीं। कई लोग मेरा यह काम बड़ी संकीर्ण दृष्टि से देखा करते थे। किसीकी भी पदोन्नति नहीं होने पर कहा जाता था कि मैं उन्हें तथाकथित रूप से नापसंद करता हूँ। जिन लोगों की पदोन्नति हो जाती उनके बारे में समझा जाता कि मैंने उनका पक्ष लिया है। कार्य मूल्यांकन के काम में मैं सचमुच बहुत ही सतर्क रहा, मुख्यतः वैज्ञानिकों के काम का मूल्यांकन करने में।

जब कोई व्यक्ति अपने को देखता है तो वह अपनी प्राप्ति के बारे में गलत अनुमान लगा लेता है। वह अपने उद्देश्यों की तरफ देखता है। ज्यादातर लोग

अच्छे उद्देश्य लेकर चलते हैं और वे जो भी काम कर रहे होते हैं तथा पूरा कर लेते हैं तो उसका अच्छा ही परिणाम मिलता है। कोई भी व्यक्ति, जो निराशाजनक ढंग से अपने किए का मूल्यांकन करता है, जो हो सकता है और प्रायः होता भी है, तो उसके अच्छे उद्देश्यों में विरोधाभास पैदा हो जाते हैं। कुछ लोग अपना काम उस ढंग से करते हैं जो उन्हें सुविधाजनक लगता है और शाम को संतुष्टि की भावना लिये घर चले जाते हैं। वे अपने काम का मूल्यांकन नहीं करते। वे अपने उद्देश्यों का मूल्यांकन भी शायद ही करते हैं। ऐसा माना जाता है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने कार्य को समय के भीतर खत्म करने का इरादा रखता है और अगर इसमें विलंब होता है तो यह उसके नियंत्रण के बाहर की बात होती है। काम में देरी करने का उसका कोई इरादा नहीं होता है; लेकिन अगर उसके काम का तरीका या आलस्य देरी का कारण बनता है तो क्या यह इरादतन नहीं होता?

जब मैं अपने युवा वैज्ञानिक दिनों को याद करता हूँ तो देखता हूँ कि उस वक्त मेरे भीतर तीव्र इच्छा शक्ति थी। मैं उस वक्त जो था, उससे भी कहीं ज्यादा बन जाने की इच्छा मेरे में थी। मैंने अपने दिमाग को कभी भी खाली नहीं रहने दिया था, न ही कहीं निरर्थक कार्य करने में लगने दिया था। मेरी इच्छा ज्यादा-से-ज्यादा कुछ अच्छा सीखने की और ज्यादा-से-ज्यादा व्यक्त करने की रहती थी। मेरे भीतर यह देखने की प्रेरणा हमेशा बनी रही कि मुझे कितनी दूर जाना था, बजाय इसके कि मुझे कितना पास आना है। कुल मिलाकर जीवन जो है वह अनसुलझी समस्याओं, संदिग्ध विजय, पराजय का ही मिश्रण है। समस्या यह है कि हम प्रायः जीवन के साथ जूझने के बजाय इसका विश्लेषण करने लगते हैं। लोग अपनी असफलताओं से कुछ सीखने के बजाय या उनका अनुभव लेने के बजाय उसके कारणों एवं प्रभाव की चीरा-फाड़ी करने लगते हैं। मेरा यह मानना है कि कठिनाइयों एवं संकटों के माध्यम से ईश्वर हमें बढ़ने का अवसर प्रदान करता है। इसलिए जब आपकी उम्मीदें, सपने एवं लक्ष्य चूर-चूर हो गए हों तो उनके भीतर तलाश कीजिए, आपको उनके भीतर छिपा कोई सुनहरी मौका अवश्य मिलेगा।

लोगों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए उनको प्रेरित करना और हताशा से उबारना हर नेता के लिए हमेशा एक चुनौती भरा काम होता है। संगठनों में बदलाव लाने के मामले में साम्यता और प्रतिरोध के बीच मैंने एक अनुरूपता पाई है। हम प्रतिरोधी बलोंवाले क्षेत्र में एक ऐसी कुंडलीवाली स्प्रिंग में परिवर्तन लाने की कल्पना करते हैं जिसमें कुछ बल तो परिवर्तन लाने में सहायक होते हैं और दूसरे बल इसका विरोध करते हैं। सहायक बलों को बढ़ाकर जैसे पर्यवेक्षी दबाव,

भविष्य की संभावनाओं एवं आर्थिक लाभों या प्रतिरोधी बलों को कम करके जैसे ग्रुप नॉर्म्स, सामाजिक पुरस्कार से स्थिति ऐसी तो बन सकती है जिससे आप इच्छित परिणाम हासिल कर लें; लेकिन यह सिर्फ बहुत थोड़े से वक्त के लिए और वह भी एक निश्चित सीमा तक ही।

इन बलों का परिणाम ही, जिनका मैंने ऊपर जिक्र किया, प्रेरणा है। यह एक ऐसा आंतरिक बल है जो काम के माहौल में उसके व्यवहार के आधार तय करता है। मेरे अनुभव में कई लोगों के भीतर आगे बढ़ने की आंतरिक शक्ति बहुत ही प्रबल होती है, वे दक्ष होते हैं। हालाँकि समस्या काम के उस माहौल की कमी की होती है जो उन्हें उनकी पूरी क्षमता से इस्तेमाल नहीं करने देता। इसलिए संगठन को नेतृत्व देनेवाले उसके समुचित ढाँचे एवं कार्यरूप से तथा कठोर परिश्रम व प्रशंसा करके काफी ज्यादा उत्पादकता बढ़ा सकते हैं।

इस तरह का अच्छा वातावरण बनाने की मैंने पहली कोशिश सन् 1983 में की, जब आई.जी.एम.डी.पी. की शुरुआत हुई। उस समय परियोजना का काम डिजाइन के चरण में चल रहा था। पुनर्गठन का नतीजा यह रहा कि कम-से-कम चालीस से पचास प्रतिशत तक कामकाज में तेजी आ गई थी। विकास एवं उड़ान परीक्षणों के लिए कई परियोजनाएँ और शुरू हुईं तथा नियमित प्रतिबद्धता और काम सामने दिखते रहने से कई छोटे-बड़े मील के पत्थर हम तय कर रहे थे। तैंतीस से बयालीस साल की आयु के बीच के युवा वैज्ञानिकों को हमने साथ लिया। मुझे लगा कि यह पुनर्गठन करने का दूसरा मौका था। लेकिन इसकी कोशिश होती कैसे? निर्देशित मिसाइल कार्यक्रम से संबंधित विकास की गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए मैंने उस समय मौजूद प्रेरणास्पद कदम उठाए। मैं आपको बताना चाहता हूँ कि इससे मेरा क्या तात्पर्य है। नेतृत्व सँभालनेवाले किसी भी व्यक्ति के भीतर प्रेरणादायक पहल तीन तरह की समझ से विकसित होती है—पहली—उन जरूरतों की पहचान जिनसे लोग अपने काम में संतुष्टि पाने की उम्मीद रखते हैं, दूसरी—वह प्रभाव जिससे कार्य की रूपरेखा में प्रेरणा होती है और तीसरी—व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करनेवाली सकारात्मक शक्तियाँ।

सन् 1983 में नवीनीकरण के उद्देश्य से यह पुनर्गठन किया गया था। यह एक बहुत ही जटिल काम था, जिसे ए.वी. रंगाराव और कर्नल आर. स्वामीनाथन ने पूरी दक्षता के साथ पूरा किया। हमने बिलकुल नए वैज्ञानिकों की एक टीम बनाई और उसको इनर्शियल गाइडेंस सिस्टम, ऑन-बोर्ड कंप्यूटर तथा प्रोपल्शन प्रणाली तैयार करने जैसे चुनौती भरे काम सौंप दिए। देश में इस तरह की कोशिशें

पहली बार हो रही थीं और इसमें हम जो तकनीक काम ले रहे थे, उसकी तुलना विश्व स्तरीय टेक्नोलॉजी से की जा सकती थी। निर्देशन टेक्नोलॉजी घूर्ण एवं त्वरणमापी के इर्द-गिर्द केंद्रित थी। ऑन-बोर्ड कंप्यूटर प्रणाली में मिशन से संबंधित आँकड़े तथा उड़ान संबंधी निर्देश थे और रैम रॉकेट प्रणाली लंबे समय के लिए रॉकेट से उच्च वेग प्रदान करने से संबंधित थी। हमारे नौजवान वैज्ञानिकों की टीमों ने न केवल इन प्रणालियों को विकसित किया बल्कि इनको संचालित करनेवाले उपकरण भी विकसित कर लिये। बाद में 'पृथ्वी' और फिर 'अग्नि' में इन निर्देशन प्रणालियों को प्रयोग में लगाया गया और इनके उत्कृष्ट नतीजे सामने आए। इन नौजवानों की टीमों की कोशिशों से ही संरक्षित टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में देश आत्मनिर्भर बन सका। संगठन के 'नवीनीकरण पहलू' का यह एक अच्छा प्रदर्शन था। उत्साही नौजवानों के संपर्क से बौद्धिक क्षमता में भी परिवर्तन आया और अनूठे परिणाम सामने आए।

मानवीय शक्ति को नया रूप देने के अलावा अब परियोजना समूहों की शक्ति को बढ़ाने का भी काम सामने पड़ा था। आमतौर पर लोग अपने कार्यस्थलों में अपनी सामाजिक, अपने स्वार्थ की और स्व-यथार्थवादी जरूरतों को पूरा करने की संतुष्टि का रास्ता तलाशते हैं। एक अच्छे नेता को माहौल के दो भिन्न रूपों की पहचान कर लेनी चाहिए। एक तो वह, जो व्यक्ति के तुष्टिकरण में मदद करता है और दूसरा वह, जो उसके कार्य से असंतोष पैदा करता है। हमने देखा है कि व्यक्ति अपने कार्य में उन अच्छाइयों और विशेषताओं को देखता है जो उसके महत्त्व, लक्ष्यों से संबंधित होती हैं और जिन्हें वह अपने जीवन में महत्त्वपूर्ण मानकर चलता है। अगर किसी नौकरी में कर्मचारियों की उपलब्धि, पहचान, मान्यता, जिम्मेदारी, भविष्य की उन्नति जैसी जरूरतें पूरी होती हैं तो वे अपना लक्ष्य हासिल करने के लिए कठोर परिश्रम करेंगे।

एक बार जब कार्य संतोषजनक होता है तो व्यक्ति उस माहौल और परिस्थितियों को देखता है जिसमें कार्य संपन्न हुआ है। वह प्रशासन की नीतियों पर गौर करता है, अपने नेता के गुणों-अच्छाइयों को देखता है, सुरक्षा, प्रतिष्ठा एवं कार्य की परिस्थितियों को देखता है। इसके बाद वह इनको अपने अंतर्वैयक्तिक संबंधों से जोड़कर देखता है। इन पहलुओं से वह अपने निजी जीवन को भी जाँचता है। यह इन सभी पहलुओं का मिला-जुला असर है, जो किसी व्यक्ति की कोशिशों और कामकाज की गुणवत्ता एवं स्तर को तय करते हैं।

सन् 1983 में संगठन में किया गया नवीनीकरण इन सभी जरूरतों में अनूठा

साबित हुआ था। इसलिए प्रयोगशाला के इस ढाँचे को बनाए रखते हुए हमने टास्क डिजाइन का काम शुरू किया। तकनीकी निदेशालयों में काम कर रहे वैज्ञानिकों को हमने सिस्टम मैनेजर बनाया, जो खासतौर से एक परियोजना पर ही ध्यान लगाए। मिसाइल हार्डवेयर के विकास में लगे सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों एवं निजी क्षेत्र की कंपनियों से संपर्क के लिए एक अलग से इकाई बनाई और इसका मुखिया विकासात्मक निर्माण तकनीकी विशेषज्ञ पी.के. बिस्वास को बनाया गया। इससे प्रयोगशाला में निर्माण सुविधाओं कर काम का दबाव कम हो गया और वे काम करने में आसानी हो गई जो बाहर से नहीं कराए जा सकते थे।

जब हमने सन् 1988 में प्रवेश किया, 'पृथ्वी' मिसाइल का काम पूरा होने के करीब था। देश में पहली बार मिसाइल प्रणाली में लिक्विड प्रोपलेंट रॉकेट इंजनों का प्रयोग होने जा रहा था। अब नीतिगत फैसलों के क्षेत्र और अच्छाइयों के अलावा सुंदरम और मैं 'पृथ्वी' टीम के साथ लगे थे। परियोजना की सफलता उन सृजनात्मक विचारों पर निर्भर थी, जो कार्य योग्य उत्पाद के रूप में बदलते जा रहे थे तथा साथ ही टीम के सदस्यों के योगदान की गुणवत्ता एवं संपूर्णता पर भी। वाई. ज्ञानेश्वर के साथ सारस्वत और पी. वेणुगोपालन ने इस बारे में बहुत ही सराहनीय काम किया। इन लोगों ने अपनी टीम के भीतर गर्व एवं उपलब्धि की भावना पैदा कर दी थी। इन रॉकेट इंजनों की महत्ता सिर्फ पृथ्वी परियोजना तक ही सीमित नहीं थी, यह एक राष्ट्रीय उपलब्धि थी। इनके सामूहिक नेतृत्व में बड़ी संख्या में इंजीनियरों एवं तकनीशियनों ने अपने को टीम लक्ष्यों के प्रति समर्पित कर दिया था, ठीक उसी तरह जैसे हर व्यक्ति अपने विशिष्ट लक्ष्य को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध था। उनकी पूरी टीम ने अपने स्वयंसिद्ध तरीके से काम पूरा किया था। ऑर्डिनेंस फैक्टरी, किरकी के साथ काम करते हुए उन्होंने इन इंजनों के लिए ईंधन के आयात को पूरी तरह खत्म कर डाला था।

यान विकास का काम सुंदरम एवं सारस्वत के सुरक्षित और दक्ष हाथों में छोड़कर मैंने मिशन के दूसरे महत्त्वपूर्ण तथा संवेदनशील क्षेत्रों का काम देखना शुरू किया। मिसाइल को उठाने एवं गति देने के लिए लॉन्च रिलीज मैकेनिज्म (एल.आर.एम.) के विकास की योजना बहुत ही सावधानी से तैयार की गई थी। प्रक्षेपण के पहले एल.आर.एम. को जकड़े रखने के लिए 'एक्सप्लोसिव बोल्ट' का विकास डी.आर.डी.एल. एवं एक्सप्लोसिव रिसर्च एंड डेवलपमेंट लेबोरेटरी (ई.आर.डी.एल.) ने संयुक्त रूप से किया था, जो बहु कार्य केंद्रों के समन्वय का एक अनूठा उदाहरण है।

उड़ान के वक्त चिंतन की धाराओं में बहने लगना और नीचे धरती की ओर देखते रहना मेरी हमेशा की आदत रही है। दूर से यह इतना सुंदर, सुव्यवस्थित एवं शांतिपूर्ण लगता है और मुझे आश्चर्य होता है कि कहाँ वे सब सीमाएँ हैं, जो जिले को जिले से, राज्य को राज्य से और देश को देश से अलग करती हैं। हमारे जीवन की जो सारी गतिविधियाँ हैं, उनके संचालन में भी शायद दूरी और अलगाव का यह भाव है।

बालासोर में बन रहे अंतरिम परीक्षण क्षेत्र (इंटरिम टेस्ट रेंज) के निर्माण के काम में कम-से-कम अभी एक साल और लगना बाकी था। 'पृथ्वी' के प्रक्षेपण के लिए हमने श्रीहरिकोटा में विशेष सुविधाएँ विकसित कर ली थीं। इनमें लॉन्च पैड, ब्लॉक हाउस, नियंत्रण कक्ष एवं मोबाइल टेलीमीटरी स्टेशन शामिल थे। मैं अपने पुराने दोस्त एम.आर. कुरुप से यहाँ मिलकर बहुत ही खुश था। कुरुप इस समय यहाँ श्रीहरिकोटा प्रक्षेपण केंद्र के निदेशक थे। 'पृथ्वी' प्रक्षेपण अभियान में कुरुप के साथ काम करते हुए मुझे बहुत ही संतोष हुआ। 'पृथ्वी' के लिए कुरुप ने एक टीम के सदस्य के रूप में काम किया था और यह काम करते हुए उन्होंने डी.आर.डी.ओ. एवं इसरो, डी.आर.डी.एल. और श्रीहरिकोटा प्रक्षेपण केंद्र के बीच सारी सीमाओं को भुला दिया था। कुरुप ने अपना बहुत सा वक्त हमारे साथ लॉन्च पैड पर बिताया। रेंज परीक्षण और रेंज सुरक्षा के अपने अनुभवों के साथ ही कुरुप ने हमें शुभकामनाएँ दीं। साथ ही ईंधन भरने और 'पृथ्वी' के लिए मैदान बनाने के काम में हमारे साथ बहुत ही उत्साह से काम किया। यह हमारे लिए हृदय में सँजोए रखने जैसा अनुभव था।

25 फरवरी, 1988 को दिन में ग्यारह बजकर तेईस मिनट पर 'पृथ्वी' को छोड़ा गया। यह देश में रॉकेट विज्ञान के इतिहास में एक युगांतरकारी घटना थी। 'पृथ्वी' एक सौ पचास किलोमीटर तक एक हजार किलोग्राम पारंपरिक युद्ध विस्फोटक सामग्री ले जाने की क्षमता से युक्त जमीन से जमीन पर मार करनेवाली केवल एक मिसाइल ही नहीं थी बल्कि यह देश में भविष्य की सारी मिसाइलों का बुनियादी रूप थी। 'पृथ्वी' की परिशुद्धता 50 सी.ई.पी. थी। इसे लंबी दूरी तक जमीन से हवा में मार करनेवाली मिसाइल का रूप देने के लिए सुधार की गुंजाइश पहले ही से रखी गई थी और इसे युद्धपोत में भी तैनात किया जा सकता था।

मिसाइल की परिशुद्धता इसकी सरक्यूलर एरर प्रॉबेबल, यानी सी.ई.पी. के रूप में व्यक्त की जाती है। सी.ई.पी. का तात्पर्य वृत्त की उस त्रिज्या की माप से है जिसके 50 प्रतिशत हिस्से में मिसाइल के हमले का असर होगा। दूसरे शब्दों में,

यदि मिसाइल की सी.ई.पी. एक किलोमीटर है (जैसीकि इराकी 'स्कड' मिसाइल की थी, जो खाड़ी युद्ध में छोड़ी गई थी) तो इसका मतलब है कि उसके लक्ष्य के एक किलोमीटर के भीतर आधे पर उसका असर पड़ना चाहिए। एक मिसाइल, जो उच्च विस्फोटकों से लैस हो और जिसकी सी.ई.पी. एक किलोमीटर हो तो वह आमतौर से निर्धारित सैन्य लक्ष्यों जैसे कमांड एवं कंट्रोल फैसेलिटी या एयर बेस को कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकेगी। हालाँकि यह अनिश्चित लक्ष्य, जैसे किसी शहर को तबाह कर सकती है। सितंबर 1944 से मार्च 1945 के बीच लंदन पर विस्फोटक हथियारों से लैस जर्मनी की वी-2 मिसाइलें दागी गई थीं और इनकी सी.ई.पी. करीब सत्रह किलोमीटर थी। फिर भी लंदन पर दागी गई पाँच सौ वी-2 मिसाइलों से इक्कीस हजार से ज्यादा लोग हताहत हुए थे और करीब दो लाख घर नष्ट हो गए थे। जब पश्चिमी राष्ट्र एन.पी.टी. पर गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे थे तब हमने पचास मीटर सी.ई.पी. हासिल करने की निर्देशित एवं नियंत्रण टेक्नोलॉजी विकसित करने पर जोर दिया था।

'पृथ्वी' को छोड़े जाने के बाद पड़ोसी देशों को काफ़ी सदमा लगा था। जबकि पश्चिमी राष्ट्रों को शुरू में तो धक्का लगा और बाद में उन्होंने अपना रोष व्यक्त किया। टेक्नोलाजी-संपन्न सात बड़े राष्ट्रों ने निर्देशित मिसाइल विकास से संबंधित कार्यक्रमों के लिए भारत को टेक्नोलॉजी देने से मना कर दिया था। पर तब तक भारत निर्देशित मिसाइलों के क्षेत्र में दुनिया में आत्मनिर्भर हो चुका था।

□

: चौदह :

रॉकेट विज्ञान में भारत की क्षमता फिर से स्थापित हो चुकी थी। उन्नत अंतरिक्ष एवं नागरिक उड्डयन उद्योग तथा मिसाइलों से युक्त सुरक्षा प्रणाली हासिल कर लेने के बाद भारत दुनिया के उन कुछ राष्ट्रों की कतार में शामिल हो गया, जो अपने को महाशक्ति कहते थे। हमेशा बुद्ध या गाँधी बनने की प्रेरणा देते रहनेवाले भारत को आखिर मिसाइल शक्ति से युक्त क्यों होना पड़ा, आनेवाली पीढ़ियों के लिए इस सवाल का जवाब देने की जरूरत पड़ेगी।

दो शताब्दियों के दमन एवं अत्याचार भी भारतीय लोगों की सृजनात्मकता और दक्षता को खत्म कर पाने में असफल रहे। आजादी हासिल करने के एक दशक के भीतर ही शांतिपूर्ण कार्यों के लिए भारतीय अंतरिक्ष एवं परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों की शुरुआत की गई। उस समय मिसाइल विकास में लगाने के लिए न तो पैसा था और न ही सशस्त्र बलों को इसकी जरूरत थी। सन् 1962 के कटु अनुभवों ने हमें मिसाइल विकास की ओर बुनियादी कदम उठाने के लिए विवश किया।

क्या 'पृथ्वी' पर्याप्त रहेगी? क्या चार या पाँच मिसाइल प्रणालियों का स्वदेशी विकास हमें ताकतवर बनने के लिए काफी होगा? या परमाणु हथियार रखकर हम शक्तिशाली हो जाएँगे? मिसाइल और परमाणु हथियार तो इस विश्व का एक बहुत ही छोटा सा हिस्सा हैं, जैसाकि मैंने देखा है कि 'पृथ्वी' के विकास ने अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में हमें एक आत्मनिर्भर राष्ट्र के रूप में प्रदर्शित किया है। उच्च टेक्नोलॉजी के लिए भारी मात्रा में पैसे और बड़े पैमाने पर बुनियादी सुविधाओं की जरूरत होती है। दुर्भाग्य से इनमें से हमारे पास कुछ भी नहीं था। इसलिए हम कर क्या सकते थे। 'अग्नि' मिसाइल टेक्नोलॉजी प्रदर्शन परियोजना के रूप में विकसित की जा रही थी और देश में उपलब्ध सारे संसाधनों का इस्तेमाल इसमें हुआ। क्या कोई जवाब दे सका?

एक दशक पूर्व जब इसरो में मैं रैक्स के बारे में चर्चा करता था तो मुझे पक्का भरोसा था कि भारतीय वैज्ञानिक एवं टेक्नोलॉजी विशेषज्ञों में मिलकर काम करके इस तकनीकी उपलब्धि को हासिल कर लेने की क्षमता थी। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं और अकादमिक संस्थाओं के संयुक्त प्रयासों से भारत निश्चित रूप से तकनीकी उपलब्धियाँ हासिल कर सकता है। अगर कोई भारतीय उद्योग को सिर्फ निर्माण करनेवाली फैक्टरियों की स्व निर्मित छवि से मुक्त कर दे तो वे देश में विकसित तकनीकी को प्रयोग में लाकर अच्छे नतीजे हासिल कर सकती हैं। ऐसा करने के लिए हमने तीन स्तरीय रणनीति बनाई—बहु संस्थानीय भागीदारी, संघ के रूप में सहायता का दृष्टिकोण और तकनीकी रूप से समर्थ होना। और इसी रणनीति से 'अग्नि' का सृजन हुआ।

'अग्नि' की टीम में पाँच सौ से ज्यादा वैज्ञानिक थे। 'अग्नि' प्रक्षेप की इन विशाल कोशिशों में कई संगठन हमारे नेटवर्क में काम कर रहे थे। 'अग्नि' मिशन की दो बातें मुख्य थीं—कार्य और कार्यकर्ता। अपना लक्ष्य पूरा करने के लिए हर सदस्य टीम के दूसरे सदस्यों पर निर्भर था। ऐसी स्थितियों में विरोधाभास और संदेह दोनों मुख्य रूप से पैदा होते जाते हैं। जब काम हो चुकने को होता है तो नेतृत्व करनेवाले अपने-अपने व्यक्तिगत ढंग से काम करनेवालों के प्रति दिलचस्पी बना लेते हैं। कुछ की यह दिलचस्पी नतीजे प्राप्त करने से संबंधित होती है। वे लक्ष्य तक पहुँचने के लिए लोगों का इस्तेमाल करते हैं। कुछ लोग काम को बहुत कम महत्त्व देते हैं और अपने साथ काम करनेवालों के काम का श्रेय खुद लेने की कोशिश करते हैं। लेकिन इस टीम ने जो सबसे ज्यादा व संभव रूप से हासिल किया, वह थी गुणवत्ता और मानवीय संबंध।

भागीदारी, अपने को पूर्णरूप से शामिल कर लेना और प्रतिबद्धता—ये तीनों किसी भी कामकाज की मुख्य कुंजी हैं। टीम के हर सदस्य ने कार्य को स्वयं चुना था। 'अग्नि' का प्रक्षेपण सिर्फ हमारे वैज्ञानिकों के लिए ही नहीं, उनके परिवारवालों के लिए भी एक अभियान था। वी.आर. नागराज विद्युत् संयोजन टीम का नेतृत्व कर रहे थे। बिलकुल एक समर्पित तकनीकीविद् थे नागराज। काम के वक्त वे खाना, सोना भी भूल जाते थे। जब वे आई.टी.आर. पर थे तब उनकी पत्नी के भाई का निधन हो गया था। उनके परिवारवालों ने उनको उसकी खबर नहीं दी थी, ताकि 'अग्नि' के प्रक्षेपण के उनके काम में बाधा न पड़ जाए।

'अग्नि' का प्रक्षेपण 20 अप्रैल, 1989 को किया जाना था। यह एक अभूतपूर्व काम होने जा रहा था। अंतरिक्ष प्रक्षेपण यानों से भिन्न मिसाइल प्रक्षेपण में सुरक्षा

संबंधी ख़तरे काफी ज्यादा होते हैं। मिसाइल पथ निर्धारण की निगरानी के लिए दो राडार, तीन टेलीमीटरी स्टेशन, एक टेलीकमांड केंद्र और चार इलेक्ट्रो-ऑप्टीकल ट्रैकिंग उपकरण स्थापित किए गए थे। इसके अतिरिक्त कार निकोबार (इस्ट्रैक) और श्रीहरिकोटा में भी एक-एक टेलीमीटरी स्टेशन स्थापित किया गया था। वैद्युत् करंट से रक्षा के लिए एक गतिकी निगरानी युक्ति भी लगाई थी। यह करंट मिसाइल बैटरियों से यान एवं नियंत्रण प्रणालियों में बहता है। वोल्टेज या दबाव में किसी भी तरह के विचलन की निगरानी के लिए स्वचालित सिगनल प्रणाली—होल्ड' लगाई गई थी। उड़ान को सिर्फ तभी मंजूरी दी जाती जब गलतियाँ या कोई चूक सुधार ली जाती। प्रक्षेपण के लिए उलटी गिनती टी-36 पर शुरू हुई और टी-7.5 मिनट से उलटी गिनती कंप्यूटर के नियंत्रण में आ गई थी।

प्रक्षेपण की तैयारियों के लिए सारे काम निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हो गए थे। हमने प्रक्षेपण के समय आसपास के गाँवों के ग्रामीणों को सुरक्षा की दृष्टि से हटा देने का फैसला किया था। इसपर मीडिया का ध्यान गया और काफी विवाद पैदा हुआ। तब 20 अप्रैल, 1989 का दिन आ पहुँचा था। पूरे राष्ट्र की निगाहें हमारी ओर लगी थीं। उड़ान परीक्षण रद्द कर देने के लिए कूटनीतिक माध्यमों के जरिए हमपर काफी विदेशी दबाव पड़ा; लेकिन हमारे पीछे भारत सरकार चट्टान की तरह खड़ी थी। टी-14 सेकंड पर कंप्यूटर ने सिगनल 'होल्ड' दिया, जो यह दरसा रहा था कि एक उपकरण,ठीक से काम नहीं कर रहा है। उसे फौरन सुधार दिया गया। इसी बीच एक और स्टेशन ने 'होल्ड' के लिए कहा। अगले कुछ ही सेकंड्रों में कई जगह से 'होल्ड' के संकेत मिले। हमें प्रक्षेपण रद्द करना पड़ा। विद्युत् सप्लाई व्यवस्था के लिए मिसाइल को खोलना पड़ा। सुबकते हुए नागराज, जिन्हें अब परिवार में मौत की सूचना मिल चुकी थी, मुझसे मिले और तीन दिन में लौट आने का वायदा किया। ऐसे साहसी लोगों के बारे में इतिहास की किसी किताब में कभी भी नहीं लिखा जाएगा, जिनके कठोर परिश्रम से ही यह देश तरक्की के रास्ते पर बढ़ पाया है। नागराज को भेजने के बाद मैं अपनी टीम के लोगों से मिला, जो सदमे एवं दुःख में थे। मैंने एस.एल.वी.-3 के अपने अनुभव उन्हें बताए। 'मेरा प्रक्षेपण यान तो समुद्र में जा गिरा था, लेकिन सफलता के साथ उसकी वापसी हुई। आप लोगों की मिसाइल आपके सामने है। सही मायने में आपने कुछ खोया नहीं है; लेकिन कुछ हफ्ते फिर से काम करना होगा।' इससे टीम के लोगों को अपना दुःख भूलने में मदद मिली और वे वापस काम पर लग गए।

प्रेस ने मिसाइल प्रक्षेपण रद्द होने को तरह-तरह से उछाला। अपने-अपने पाठकों को रुचिकर लगनेवाली जो कल्पित चीजें वे छाप सकते थे, छापीं। कार्टूनिस्ट सुधीर धर ने एक कार्टून बनाया, जिसमें दुकानदार सेल्समैन को सामान लौटाते हुए यह कह रहा था कि 'अग्नि' की तरह यह भी नहीं उड़ेगा। एक अन्य कार्टून में दिखाया गया कि एक 'अग्नि' वैज्ञानिक सफाई दे रहा है कि प्रक्षेपण इसलिए स्थगित किया गया, क्योंकि बटन दबाने पर ठीक से संपर्क नहीं हुआ। हिंदुस्तान टाइम्स में कार्टून था—एक राजनेता प्रेस रिपोर्टरों को दिलासा देते हुए कह रहा है—'किसी भी तरह के डर की कोई बात नहीं है। यह पूरी तरह शांतिपूर्ण था, अहिंसक मिसाइल।'

अगले दस दिन तक रात-दिन एक करके हमारे वैज्ञानिकों ने विस्तृत विश्लेषण के बाद मिसाइल प्रक्षेपण के लिए 1 मई, 1989 का दिन तय किया था। लेकिन इस बार फिर स्वचालित कंप्यूटर जाँच में टी-10 सेकंड पर 'होल्ड' सिगनल मिला। बारीकी से जाँच करने पर पता चला कि नियंत्रण प्रणाली का एक उपकरण—एस-1 टी.वी.सी. मिशन की जरूरतों के अनुसार काम नहीं कर रहा है। इस बार फिर प्रक्षेपण स्थगित करना पड़ा। अब रॉकेट विज्ञान में ऐसी चीजें होते रहना आम है और दूसरे देशों में भी ऐसा होता रहता है; लेकिन उत्साही राष्ट्र हमारी समस्याओं को समझना नहीं चाह रहा था। 'हिंदू' में केशव ने एक कार्टून बनाया। इसमें दिखाया गया कि एक ग्रामीण कुछ नोट गिन रहा है और दूसरे से कह रहा है—'हाँ, टेस्ट साइट के पास बनी मेरी झोंपड़ी से निकल जाने का ही यह मुआवजा है। कुछ बार और यह रद्द हो और मैं खुद का मकान बना सकूँ।' एक अन्य कार्टूनिस्ट ने 'अग्नि' को बताते हुए कहा, 'आई.डी.बी.एम.—इंटरमिटेंटली डिलेड बैलेस्टिक मिसाइल।' अमूल के कार्टून में सुझाया गया था कि 'अग्नि' को जो जरूरत थी, वह ईंधन के रूप में उसके मक्खन की थी।

अपनी टीम को आई.टी.आर. में छोड़कर मैं कुछ समय के लिए डी.आर.डी.एल., आर.सी.आई. के लोगों से बात करने गया। 8 मई, 1989 को काम खत्म होने के बाद डी.आर.डी.एल. और आर.सी.आई. के सारे लोग एक साथ जमा हुए। मैंने दो हजार से ज्यादा लोगों को संबोधित किया। 'मुश्किल से ही कोई ऐसी प्रयोगशाला या शोध एवं विकास प्रतिष्ठान हो, जिसे देश में पहली बार 'अग्नि' जैसी कोई प्रणाली विकसित करने का अवसर मिला होगा। हम लोगों को एक बड़ा मौका दिया गया है। स्वाभाविक है, बड़े अवसरों के साथ बड़ी चुनौतियाँ भी बराबर होती हैं। हमें समस्याओं को छोड़ नहीं देना चाहिए और हमें वशीभूत

करने की समस्याओं को अनुमति भी नहीं देनी चाहिए। देश हमसे सफलता से कम पर कुछ भी उम्मीद नहीं रखता है। इसलिए हमें सफलता को उद्देश्य बनाकर काम करना होगा।' मैं करीब-करीब अपना भाषण पूरा कर ही चुका था, तभी मुझे लगा कि जैसे मैं अपने लोगों से कह रहा हूँ—'मैं आपसे वायदा करता हूँ कि इस महीने के आखिर से पहले 'अग्नि' को सफलतापूर्वक छोड़कर हम यहाँ दोबारा मिलेंगे।'

दूसरी बार में उपकरण की खराबी के विस्तृत विश्लेषण से नियंत्रण प्रणाली को फिर से तैयार करने की जरूरत समझी गई। यह काम डी.आर.डी.ओ.-इसरो की टीम को सौंपा गया। इसरो के लिक्विड प्रोपेलेंट सिस्टम कांप्लेक्स (एल.पी.एस.सी.) में पहले चरण की नियंत्रण प्रणाली को सुधारा गया और इस काम को पूरी इच्छा शक्ति से रिकॉर्ड समय के भीतर पूरा कर लिया गया। यह अपने में आश्चर्यजनक ही था कि कैसे कई सौ वैज्ञानिकों और दूसरे कर्मचारियों ने लगातार काम करते हुए उसे दस दिन में ही फिर से पूरा तैयार कर दिया। ग्यारहवें दिन ही सुधरी हुई नियंत्रण प्रणाली को लेकर हवाई जहाज त्रिवेंद्रम से उड़ा और आई.टी.आर. के पास उतरा। लेकिन इस समय मौसम काफी खराब था। समुद्री तूफान आने का खतरा हमारे सामने मँडरा रहा था। सभी कार्य केंद्र उपग्रह संचार और एच.एफ. लिंक (हाई फ्रीक्वेंसी लिंक) से जुड़े हुए थे। हर दस मिनट में मौसम विभाग से आँकड़े आने शुरू हो गए थे।

अंततः प्रक्षेपण 22 मई, 1989 को निर्धारित किया गया। प्रक्षेपण से पहलेवाली रात को डॉ. अरुणाचलम, जनरल के.एन. सिंह और मैं रक्षामंत्री के.सी. पंत के साथ घूम रहे थे, जो आई.टी.आर. 'अग्नि' का प्रक्षेपण देखने आए थे। उस दिन पूरी चाँदनी रात थी। ज्वार पूरे जोरों पर था। लहरें एक-दूसरे से टकराकर शोर पैदा कर रही थीं। क्या कल होनेवाले 'अग्नि' प्रक्षेपण में हम कामयाब रह पाएँगे? यह सवाल हम सबके दिमाग में घूम रहा था। लेकिन हममें से कोई भी उस चाँदनी रात के सन्नाटे को तोड़ना नहीं चाहता था। लंबी चुप्पी तोड़ते हुए रक्षामंत्री ने आखिरकार मुझसे पूछ लिया—'कलाम! कल 'अग्नि' की सफलता पर तुम मुझसे क्या तोहफा लेना पसंद करोगे?' यह एक साधारण सवाल था, जिसका जवाब मैं तत्काल नहीं सोच सका! ऐसा क्या चाहूँ जो मेरे पास नहीं है? मुझे खुशी किससे मिल सकती है? और तब मुझे जवाब मिल गया। 'हमें आर.सी.आई. में एक लाख छोटे पौधे लगाने की जरूरत है।' मैंने कहा। 'तुम 'अग्नि' की सफलता के लिए धरती माँ का आशीर्वाद ले रहे हो।' रक्षामंत्री के.सी. पंत ने पलटकर कहा। 'हम कल जरूर

सफल होंगे।' उन्होंने कहा।

अगले दिन सुबह सात बजकर दस मिनट पर 'अग्नि' को छोड़ा गया। यह पूरी तरह सफल प्रक्षेपण था। मिसाइल अपने निर्धारित पथ पर ही बढ़ी। उड़ान संबंधी सारे आँकड़े मिले। यह किसी दुःस्वप्नवाली रात के बाद खूबसूरत सुबह में जागने जैसा था। कई केंद्रों पर एक साथ लगातार पाँच साल काम करने के बाद अब हम लॉन्च पैड तक पहुँचे थे। पिछले पाँच हफ्तों में हम कई कठोर अग्नि-परीक्षाओं से गुजरे थे। हमपर हर तरफ से यह सब रोक देने के लिए दबाव पड़ रहा था। यह मेरे जीवन का सबसे सुखद क्षण था। करीब छह सौ सेकंड की इस भव्य उड़ान के बाद हमारा सारा करा-कराया एक ही क्षण में विलुप्त हो गया। उस रात मैंने अपनी डायरी में लिखा—

'अग्नि में मत ढूँढ़ो
शत्रु को भयग्रस्त करता
शक्ति का स्तंभ कोई।
यह तो है एक आग
दिल में जो सुलगती
हर भारतीय के,
सभ्यता के स्रोत-सी।
एक छोटी सी प्रतिमा है यह
भारत के गौरव की
आभा से प्रदीप्त जो।'

प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 'अग्नि' प्रक्षेपण को 'आत्मनिर्भर तरीकों से देश की स्वतंत्रता एवं सुरक्षा की रक्षा के लिए हमारे सतत प्रयासों की एक बड़ी उपलब्धि' बताया था। 'अग्नि' के माध्यम से जो तकनीकी प्रदर्शन किया गया वह देश की रक्षा के लिए अत्याधुनिक तकनीक के स्वदेशी विकास के प्रति हमारी प्रतिबद्धता को बताता है। 'देश को आपके प्रयासों पर गर्व है।' उन्होंने मुझसे कहा। राष्ट्रपति वेंकटरामन ने 'अग्नि' की सफलता में अपने सपने को पूरा होते हुए देखा था। उन्होंने शिमला से फोन पर मुझसे कहा, 'यह आपके समर्पण, कठोर परिश्रम एवं प्रतिभा का ही फल है।'

इस टेक्नोलॉजी मिशन के बारे में कई व्यक्तियों, समूहों ने तरह-तरह की गलत एवं भ्रामक सूचनाएँ भी फैलाई थीं। 'अग्नि' को परमाणु हथियार प्रणाली के रूप में कभी भी नहीं देखा गया था। इसने तो हमें गैर परमाणु हथियार बनाने की

क्षमता विकसित करने का विकल्प तैयार करने में समर्थ बनाया था। 'अग्नि' ने हमें समकालीन रणनीतिक सिद्धांतों की प्रासंगिकता के मद्देनजर गैर परमाणु हथियारों का विकल्प दिया था।

'अग्नि' के परीक्षण पर सबसे ज्यादा गुस्सा तो अमेरिका की एक मशहूर रक्षा पत्रिका द्वारा व्यक्त किया गया। अमेरिकी कांग्रेस ने मिसाइल से संबंधित टेक्नोलॉजी और दोहरे इस्तेमालवाली सभी तकनीकियाँ एवं बहुराष्ट्रीय सहायता बंद कर देने की धमकी भी दे डाली।

मिसाइल एवं युद्ध हथियारों की टेक्नोलॉजी के एक तथाकथित विशेषज्ञ गैरी मिलहॉलिन ने 'द वाल स्ट्रीट जर्नल' में दावा किया था कि भारत ने 'अग्नि' पश्चिम जर्मनी की मदद से बनाई थी। मुझे यह पढ़कर बहुत ही हँसी आई कि 'अग्नि' की निर्देशन प्रणाली, प्रथम चरण का रॉकेट और उसका अगला हिस्सा जर्मन एयरोस्पेस रिसर्च इस्टेब्लिशमेंट (डी.एल.आर.) ने विकसित किया था और 'अग्नि' के वायुगतिकीय मॉडल का परीक्षण डी.एल.आर. की 'विंड टनल' में ही किया गया था। डी.एल.आर. की तरफ से फौरन इसका खंडन आया और डी.एल.आर. ने अटकल लगाते हुए इसे दूसरी तरफ मोड़ दिया। डी.एल.आर. ने कहा कि 'अग्नि' के लिए भारत को फ्रांस ने तकनीकी मदद दी थी। अमेरिकन सीनेटर जैफ बिंगमैन ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'अग्नि' के लिए सभी जरूरी चीजें और तकनीक मैंने अपने चार महीने के वैलप द्वीप की यात्रा के दौरान जुटाई थीं। तथ्य यह था कि वैलप द्वीप मैं पच्चीस साल पहले गया था और 'अग्नि' में इस्तेमाल की गई तकनीक तब कहीं नहीं थी, यहाँ तक कि अमेरिका में भी नहीं।

आज की दुनिया में टेक्नोलॉजी में पिछड़ापन परतंत्रता की ओर ले जाता है। क्या इसकी बिना पर हमें अपनी आजादी को समझौता करने की इजाजत दे देनी चाहिए? इस चुनौती के खिलाफ अपने राष्ट्र की सुरक्षा एवं एकता को सुनिश्चित करना हमारा एक भारी कर्तव्य है। हमारे पूर्वजों ने देश की आजादी के लिए साम्राज्यवादी ताकतों से संघर्ष कर जो सच्ची आजादी हमें विरासत में सौंपी है, क्या हमें उसे नहीं बनाए रखना चाहिए? जब हम टेक्नोलॉजी में पूरी तरह आत्मनिर्भर होंगे, सिर्फ तभी हम अपने देश को सुरक्षित रख पाएँगे।

'अग्नि' को छोड़े जाने से पहले तक भारतीय सशस्त्र सेनाओं की सबसे अहम भूमिका राष्ट्र की एकता को सुरक्षित रखना, पड़ोसी देशों द्वारा फैलाई जानेवाली गड़बड़ी से लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को बचाए रखना और किसी भी कीमत पर देश को बाहरी दखल से बचाने की थी। 'अग्नि' के बाद भारत उस स्थिति में पहुँच

गया था, जब उसके पास अपने को युद्ध में शामिल किए जाने से बचाए रखने का विकल्प आ गया था।

'अग्नि' आई.जी.एम.डी.पी. के पूरे पाँच साल का काम पूरा हो जाने का प्रतीक थी। अब इसने रि-एंट्री टेक्नोलॉजी जैसे जटिल क्षेत्र में अपनी दक्षता दिखा दी थी। 'पृथ्वी' एवं 'त्रिशूल' का परीक्षण हम पहले कर ही चुके थे और 'नाग' तथा 'आकाश' की दक्षता ने हमें उस मुकाम पर पहुँचा दिया था, जहाँ इस क्षेत्र में हमारा कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं था। इन दो मिसाइल प्रणालियों में टेक्नोलॉजी विकास की बहुत संभावनाएँ थीं। बस इनपर तेजी से ध्यान दिए जाने की जरूरत थी।

सितंबर 1989 में बंबई में महाराष्ट्र विज्ञान अकादमी ने मुझे जवाहरलाल नेहरू स्मृति व्याख्यान देने के लिए बुलाया। इस अवसर का इस्तेमाल मैंने हवा से हवा में मार कर सकनेवाली स्वदेशी मिसाइल 'अस्त्र' विकसित करने की योजना पर वैज्ञानिकों से विचार-विमर्श करने में किया। इसे भारतीय हलके लड़ाकू विमान (एल.सी.ए.) के विकास से जाकर जुड़ना था। मैंने उनसे कहा कि 'नाग' मिसाइल प्रणाली में इमेजिंग इन्फ्रा रेड (आई.आई.आर.) और मिलीमीटरिक वेव (एम.एम.डब्ल्यू.) राडार तकनीकी के क्षेत्र में हमारे काम ने हमें मिसाइल टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे शोध एवं विकास की पंक्ति में ला दिया है। मैंने इस ओर भी उनका ध्यान दिलाया कि कार्बन-कार्बन की जटिल भूमिका, कंपोजिट पदार्थ की भी रि-एंट्री टेक्नोलॉजी में बड़ी भूमिका रही है। 'अग्नि' उन तकनीकी कोशिशों का प्रतिफल थी, जिनकी शुरुआत प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की प्रेरणा से हुई थी और जब देश ने टेक्नोलॉजी-संपन्न औद्योगिक राष्ट्रों की निर्भरता खत्म करने की ठानी थी तथा टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ना शुरू किया था।

सितंबर 1988 में 'पृथ्वी' का दूसरा उड़ान परीक्षण हुआ, जो फिर एक महान् उपलब्धि थी। 'पृथ्वी' आज जमीन से जमीन पर मार करनेवाली दुनिया की सर्वश्रेष्ठ मिसाइल है। यह दो सौ पचास किलोमीटर तक एक हजार किलो युद्ध विस्फोटक ले जाने की क्षमता से युक्त है। युद्धक्षेत्र की परिस्थितियों में और बहुत ही कम समय में कंप्यूटर नियंत्रित ऑपरेशनों से विभिन्न भार तथा भिन्न-भिन्न दूरी तक युद्ध विस्फोटक पहुँचाए जा सकते हैं। 'पृथ्वी' मिसाइल सभी मामलों—डिजाइन, संचालन, तैनातगी—में पूर्णरूप से स्वदेशी है। बी.डी.एल. में उपलब्ध सुविधाओं से इसका बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जा सकता है। इन सराहनीय कोशिशों की क्षमता को भारतीय सेना ने फौरन मान्यता दी और 'पृथ्वी' एवं 'त्रिशूल' मिसाइलों

के निर्माण के लिए ऑर्डर देने हेतु मंत्रिमंडल के राजनीतिक मामलों की समिति (सी.सी.पी.ए.) ने भी अपनी मुहर लगा दी। आजादी के बाद से बड़े एवं पेचीदा हथियारों की खरीद के मामले में पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था।

□

IV

अवलोकन

(1991—)

वह जोड़ता, तोड़ता
फिर बनाता
उस रूप में
जो कोई नहीं जानता
कोई नहीं पहचानता।

—अल वकाह
कुरान, 56 : 61

: पंद्रह :

वर्ष 1990 के गणतंत्र दिवस पर राष्ट्र ने अपने मिसाइल कार्यक्रम की सफलता पर खुशी मनाई। मुझे और डॉ. अरुणाचलम को पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया। मेरे दो और साथियों—जे.सी. भट्टाचार्य और आर.एन. अग्रवाल—को पद्मश्री सम्मान मिला। स्वतंत्र भारत के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ था जब एक ही संगठन से जुड़े इतने वैज्ञानिकों के नाम सम्मानित व्यक्तियों की सूची में साथ थे। मुझे एक दशक पूर्व मिले पद्म भूषण सम्मान की यादें ताजा हो आईं। मैं आज भी करीब-करीब वैसे ही रहता हूँ जैसे उस समय रहता था—दस फीट चौड़ा, बारह फीट लंबा कमरा मुख्य रूप से किताबों से सजा हुआ, कागज के पुलिंदे और थोड़ा सा फर्नीचर। उस समय मेरा यह कमरा त्रिवेंद्रम में हुआ करता था और अब यह हैदराबाद में है। मेस का बैरा मेरे लिए इडली और छाछ का नाश्ता लेकर आया। वह मुसकराया और मुझे बधाई दी। मेरे देश के लोगों द्वारा मेरे काम को प्रदान की गई मान्यता मुझे छू गई। बड़ी संख्या में वैज्ञानिक और इंजीनियर देश छोड़कर पैसा कमाने के लिए विदेश चले जाते हैं। यह सही है कि उन्हें निश्चित ही वहाँ पैसा काफी ज्यादा मिलता है, लेकिन अपने देश के लोगों के प्रेम और सम्मान की क्या कोई भरपाई कर सकता है!

मैं कुछ समय के लिए बिलकुल अकेला, मौन चिंतन की अवस्था में बैठा रहा। रामेश्वरम् की मिट्टी व चट्टानें, रामनाथपुरम् में अयादुरै सोलोमन का सान्निध्य, त्रिची में फादर सिक्वेरिया और मद्रास में प्रो. पनदलाई का मार्गदर्शन, बंगलौर में डॉ. मेदीरत्ता द्वारा उत्साहवर्धन, प्रो. मेनन के साथ हॉवरक्राफ्ट में सवारी करना, प्रो. साराभाई के साथ तिलपत रेंज का दौरा, एस.एल.वी.-3 की असफलतावाले दिन डॉ. ब्रह्मप्रकाश की दिलासा, एस.एल.वी.-3 के सफल प्रक्षेपण के दिन राष्ट्र द्वारा आनंदोत्सव मनाया जाना, श्रीमती गांधी की प्रशंसा भरी मुसकराहट, मुझे डी.आर.डी.ओ. में ले जाने का डॉ. रामन्ना का विश्वास, आई.जी.एम.डी.पी.,

आर.सी.आई. का बनना, 'पृथ्वी', 'अग्नि'···और इस तरह ढेरों स्मृतियाँ निकलती गईं। अब ये सब लोग थे कहाँ?—मेरे पिताजी, प्रो. साराभाई, डॉ. ब्रह्मप्रकाश? क्या मैं इनसे मिलकर अपनी खुशी को बाँट सकता था? ध्यान-चिंतन की स्थिति में जैसे मैं दो अवस्थाओं में एक साथ पहुँच गया—स्वर्ग का पुत्र और धरती का बेटा।

'जाओ दूर विचारो
मेरे मन को मत घेरो जालों में।
फेंक डाली कामना मैंने
और भर लिया
यह पात्र जीवन का
कर्म से, कर्तव्य से, कल्याणकारी सृजनता से
पर अभी भी हैं विचरतीं
स्मृतियाँ रामेश्वरम् की
ज्यों थिरकते धूलकण रवि-ऊर्जा में।'

एक पखवाड़े बाद अय्यर और टीम ने 'नाग' मिसाइल छोड़कर मिसाइल कार्यक्रम के लिए पुरस्कारों का जश्न मनाया। अगले ही दिन इन लोगों ने इस साहसिक कमाल को दोहराया। पहले भारतीय कंपोजिट एयर फ्रेमों एवं प्रोपल्शन सिस्टम का दो बार परीक्षण किया गया। इन परीक्षणों ने स्वदेशी ऊष्मीय बैटरियों की गुणवत्ता को साबित कर दिखाया।

भारत तीसरी पीढ़ी की टैंक भेदी मिसाइलें विकसित करने का गौरव हासिल कर चुका था। ये मिसाइलें दुनिया में अपने किस्म की अलग ही हैं। स्वदेशी कंपोजिट टेक्नोलॉजी ने उपलब्धि के रूप में एक बड़ा मील का पत्थर तय कर लिया था। 'नाग' की सफलता ने एक बार पुनः अंतःसंस्थागत भागीदारी की उपयोगिता साबित कर दी, जिससे पहले ही 'अग्नि' के सफल विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ था।

'नाग' मिसाइल में दो मुख्य तकनीकियाँ इस्तेमाल की जाती हैं—इमेजिंग इन्फ्रा रेड प्रणाली (आई.आई.आर.) और मिलीमीटरिक वेव (एम.एम.डब्ल्यू.) राडार। देश में एक भी प्रयोगशाला ऐसी नहीं थी जिसमें उच्च तकनीकी की प्रणालियों को विकसित करने की क्षमता थी। लेकिन सफलता हासिल करने के दृढ़ इरादे से यह संभव हुआ, सबकी साझा कोशिशों से इन प्रणालियों को विकसित किया गया। चंडीगढ़ स्थित सेमीकंडक्टर कांप्लेक्स में चार्ज कपल्ड डिवाइस (सी.सी.डी.) का पटल (अरे) विकसित किया गया। सॉलिड फिजिक्स लेबोरेटरी, दिल्ली ने मरकरी कैडमियम टेलुराइड (एम.सी.टी.) डिटेक्टर तैयार किए। डिफेंस

साइंस सेंटर, दिल्ली ने जूलियस थॉमस इफैक्ट पर आधारित एक स्वदेशी कूलिंग प्रणाली विकसित की थी। इसी तरह डिफेंस इलेक्ट्रॉनिक्स एप्लीकेशन लेबोरेटरी (डी.ई.ए.एल.) ने ट्रांसमीटर रिसीवर विकसित किया था।

उसी महीने मैं मदुरै कामराज विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में भाषण देने गया। जब मैं मदुरै पहुँचा तो मैंने अपने हाई स्कूल के शिक्षक अयादुरै सोलोमन के बारे में पता लगाया। अब वे करीब अस्सी साल के थे। मुझे बताया गया कि वे मदुरै के बाहर एक छोटी बस्ती में रहते हैं। मैंने टैक्सी ली और उनके घर की तलाश में निकल गया। श्रद्धेय सोलोमन को यह तो पता था कि उस दिन मैं दीक्षांत भाषण देने जा रहा हूँ, पर उनके पास वहाँ पहुँचने का कोई जरिया नहीं था। मुझे अपने घर पर आया पाकर उनकी आँखें भर आईं। मैं उन्हें अपने साथ दीक्षांत समारोह में ले गया। गुरु एवं शिष्य के बीच एक भावनात्मक मिलन था। तमिलनाडु के राज्यपाल डॉ. पी.सी. अलेक्जेंडर, जो इस दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता कर रहे थे, ने मेरे वृद्ध गुरु का मान रखते हुए उनसे अनुरोध किया कि वे भी मंच पर आकर बैठें।

'हरेक विश्वविद्यालय का हर दीक्षांत समारोह किसी बाँध के विशाल द्वारों को खोलने के समान होता है, जिससे निकला प्रवाह संस्थानों, संगठनों एवं उद्योगों द्वारा राष्ट्र निर्माण की फसलें सींचने हेतु पानी के स्रोतों और दरियाओं में बदलकर दूर-दूर तक फैल जाता है।' मैंने नौजवान छात्रों से कहा। किसी तरह मुझे लगा कि मैं वही कह रहा हूँ, जो श्रद्धेय सोलोमन ने करीब आधी सदी पहले कहा था। अपने भाषण के बाद मैंने अपने गुरु के सामने झुककर प्रणाम किया। 'महान् स्वप्नद्रष्टाओं के बड़े सपने हमेशा कहीं अधिक श्रेष्ठ होते हैं।' मैंने श्रद्धेय सोलोमन से कहा। 'तुम न सिर्फ मेरे लक्ष्यों तक पहुँच गए हो, कलाम, बल्कि तुम उससे भी आगे निकल गए हो।' उन्होंने मुझसे कहा। प्रेम से उनका गला भर आया था।

अगले महीने मैं त्रिची गया। वहाँ मैंने सेंट जोसेफ कॉलेज जाने का मौका निकाला। अब वहाँ मुझे श्रद्धेय फादर सिक्वेरिया एरहार्ट, प्रो. सुब्रह्मण्य, प्रो. अय्यपेरुमल कोनार या प्रो. थोथाथ्री आयंगर तो नहीं मिले थे, लेकिन लगता था कि सेंट जोसेफ कॉलेज की इमारत के पत्थरों में इन महान् आत्माओं की बौद्धिक छाप जरूर मौजूद थी। मैंने सेंट जोसेफ कॉलेज के छात्रों के साथ अपनी यादों को ताजा किया और अपने उन गुरुओं के प्रति सम्मान व्यक्त किया जिन्होंने मेरे जीवन को बनाया।

देश का चौवालीसवाँ स्वतंत्रता दिवस हमने 'आकाश' की परीक्षण उड़ान से मनाया। प्रह्लाद और उनकी टीम ने एक नई ठोस ईंधन बूस्टर प्रणाली तैयार की थी। उच्च ऊर्जा के अपने विशिष्ट गुणों के साथ यह ईंधन (प्रोपेलेंट) लंबी दूरी की

जमीन से हवा में मार करनेवाली मिसाइल में प्रयोग में लाया जा सकता था। भू-आधारित वायुरक्षा के क्षेत्र में देश की यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

वर्ष 1990 के आखिर में जादवपुर विश्वविद्यालय ने एक विशेष दीक्षांत समारोह में मुझे 'डॉक्टर ऑफ साइंस' की मानद उपाधि से सम्मानित किया। इसी दीक्षांत समारोह में नेल्सन मंडेला को भी सम्मानित किया गया था। नेल्सन मंडेला जैसी हस्ती के साथ अपना नाम देखकर मैं थोड़ा उलझन में पड़ गया था। आखिर ऐसा क्या था जिसकी वजह से मंडेला जैसी हस्ती के साथ मेरे जैसे साधारण व्यक्ति को रखा गया? शायद यह हमारे मिशन की निरंतरता और हम लोगों का इसमें डटे रहना था। अगर मंडेला के मिशन से तुलना करके देखा जाए तो मेरा मिशन शायद रॉकेट विज्ञान को देश में उन्नत बनाने से ज्यादा नहीं था; जबकि मंडेला का मिशन तो विशाल मानव जाति के लिए गरिमा प्राप्त करने को लेकर था। लेकिन हमारे धैर्य की तीव्रता में कोई फर्क नहीं था। नौजवान श्रोताओं से मैंने अपने भाषण में कहा, 'ठोस उपलब्धियाँ हासिल करने के लिए और ज्यादा समर्पित होना पड़ता है।'

मिसाइल काउंसिल ने वर्ष 1991 को डी.आर.डी.एल. एवं आर.सी.आई. के लिए 'ईयर ऑफ इनीशिएटिव' घोषित किया था। 'पृथ्वी' एवं 'त्रिशूल' का विकास पूरा कर लेने के बाद हमें अब इसका परीक्षण करना था। मैंने अपने साथियों से एक वर्ष के भीतर उपयोग परीक्षण शुरू करने को कहा। मुझे पता था कि यह काफी कठिन कार्य होने जा रहा है; लेकिन यहाँ तक पहुँचने के बाद रुकने या सुस्ताने का सवाल ही कहाँ था!

रियर एडमिरल मोहन रिटायर हो गए थे और उनकी जगह उनके उप परियोजना निदेशक कपूर ने 'त्रिशूल' का काम सँभाला। मिसाइल नियंत्रण निर्देशन के मामले में मोहन की समझ का मैं हमेशा प्रशंसक रहा। इस क्षेत्र में इस नाविक-शिक्षक-वैज्ञानिक जैसा दूसरा विशेषज्ञ देश में शायद ही होगा। 'त्रिशूल' से संबंधित बैठकों के दौरान 'कमांड लाइन ऑन साइट' (सी.एल.ओ.एस.) के विभिन्न पहलुओं के बारे में जो अद्भुत जानकारियाँ उन्होंने दीं, वे हमेशा मुझे याद रहेंगी। मोहन बड़े जिंदादिल बुद्धिजीवी हैं। एक बार अपने चारों ओर फैले और खत्म न हो पा रहे काम पर वह कविता लिखकर लाए—

'असंभव लक्ष्य
समय के आँकड़ों से बँधे
बढ़ाते जा रहे दीवानगी, दरवेश के दर।
समितियाँ, आकलन, समीक्षाएँ

सुलझातीं शून्य, उलझातीं शेष।
काम-ही-काम
न कोई अवकाश, न कोई आराम
ऊबा परिवार, उपेक्षित परिजन
मसोसते हाथ ढूँढ़ते बाल
हाय मेरा उजड़ा चमन।'

मैंने उनसे कहा, 'मैंने समय रहते अपनी सारी समस्याएँ डी.आर.डी.एल., आर.सी.आई. और दूसरी भागीदार प्रयोगशालाओं की उत्कृष्ट टीमों को सौंप दी हैं, जिसके चलते कम-से-कम मेरे सिर के बालों पर कुछ फर्क नहीं पड़ा।'

वर्ष 1991 की शुरुआत अनिष्टकारी वर्ष के रूप में हुई। 15 जनवरी, 1991 की रात इराक एवं अमेरिका के नेतृत्ववाली सहयोगी सेनाओं के बीच खाड़ी युद्ध छिड़ गया। उस वक्त भारतीय आकाश पर से गुजर रहे उपग्रह टेलीविजन की तरफ भारतीय जनता का ध्यान गया। अमेरिकी उपग्रह टी.वी. चैनल सी.एन.एन. पर दिखाई जा रही रॉकेटों व मिसाइलों की ओर पूरे राष्ट्र का ध्यान लग गया। कॉफी हाउसों और चाय की दुकानों तक में लोगों ने 'स्कड' व 'पैट्रियॉट' मिसाइलों के बारे में चर्चाएँ करनी शुरू कर दी थीं। बच्चे आकाश में मिसाइल जैसी बनी पतंगें उड़ाते और अमेरिकी टेलीविजन नेटवर्क पर युद्ध का जो 'नाटकीय वृत्तांत' देखते-सुनते उनसे प्रेरित हो युद्ध संबंधी खेल खेलते। खाड़ी युद्ध के दौरान ही 'पृथ्वी' एवं 'त्रिशूल' के सफल परीक्षण से चिंतित राष्ट्र को काफी राहत मिली थी। अखबारों ने 'पृथ्वी' एवं 'त्रिशूल' की क्षमताओं, निर्देशन प्रणालियों आदि के बारे में लोगों को काफी जानकारियाँ दीं। हमारे देश के लोग खाड़ी युद्ध में इस्तेमाल की जा रही मिसाइलों और हमारी अपनी मिसाइलों के बीच समानताएँ जानने के लिए उत्सुक थे। एक साधारण सवाल, जिसका मुझे सामना करना पड़ा, यह था कि क्या 'स्कड' की तुलना में 'पृथ्वी' ज्यादा श्रेष्ठ है या 'पैट्रियॉट' की जगह 'आकाश' काम कर सकती है आदि-आदि। मुझसे 'हाँ' और 'क्यों नहीं' सुनकर लोगों के चेहरे गर्व और संतोष से चमक उठते।

अमेरिका के नेतृत्ववाली सेनाओं ने इस युद्ध में युद्ध तकनीकी क्षमताओं का पूरा प्रदर्शन किया था। ये तकनीकियाँ आठवें और नौवें दशक में विकसित की गई थीं। जबकि इराक छठे एवं सातवें दशक की युद्ध तकनीक के सहारे लड़ रहा था।

अब आधुनिक विश्व में तकनीकी के माध्यम से ही श्रेष्ठता हासिल करने का समय है। दुश्मन को अत्याधुनिक तकनीक से बेंचैन कर फिर असमान युद्ध में

अपनी शर्तें रखो। चीनी युद्ध दार्शनिक सन-त्जु ने दो हजार साल से भी पहले अपने चिंतन में कहा था कि युद्ध में बड़ी संख्या में शत्रु देश के सैनिकों को मार डालना उतना अर्थ नहीं रखता जितना कि उसे मानसिक रूप से हरा देना महत्त्वपूर्ण होता है। लगता है, उन्होंने बीसवीं सदी के युद्ध की कल्पना करते हुए यह कहा था। खाड़ी युद्ध में इलेक्ट्रॉनिक युद्ध एवं मिसाइलों की ताकत सैन्य रणनीति विशेषज्ञों के लिए एक पर्व की तरह थी, जिसने मिसाइल, इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना युद्ध की इक्कीसवीं सदी के एक नाटक के रूप में झलक पेश की थी।

भारत में आज भी ज्यादातर लोगों के लिए 'टेक्नोलॉजी' शब्द का अर्थ धुआँ उगलते स्टील कारखानों या झनझनाती मशीनोंवाले कारखाने से है। टेक्नोलॉजी शब्द की जो सही-सही अवधारणा है, वह इससे बिलकुल अलग है। टेक्नोलॉजी में तकनीकियाँ शामिल होती हैं—ठीक वैसे ही जैसे मशीनें, जिन्हें इस्तेमाल करना जरूरी हो भी सकता है और नहीं भी। तकनीकियों में जैसे रासायनिक क्रियाओं के तरीके, मछलियों के प्रजनन के तरीके, मरीजों का इलाज, इतिहास पढ़ाना, युद्ध लड़ना या उससे बचाव के तरीके भी शामिल होते हैं।

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि टेक्नोलॉजी खुद ही अपनी पोषक होती है। टेक्नोलॉजी ही और टेक्नोलॉजी को संभव बनाती है। दरअसल टेक्नोलॉजी विकास के तीन चरण मुख्य होते हैं, जो आपस में एक-दूसरे से जुड़े हैं। पहला चरण सृजन का होता है, जिसमें उपयुक्त विचार का खाका या नक्शा होता है। फिर यह अपने व्यावहारिक प्रयोग से वास्तविक रूप में सामने आता है और अंत में समाज द्वारा इसके विस्तार में इसका अंत हो जाता है। यह प्रक्रिया तब पूरी हो जाती है जब यह टेक्नोलॉजी नए-नए सृजनात्मक विचारों को पैदा करती है।

खाड़ी युद्ध में सहायक सेनाओं की विजय टेक्नोलॉजी की श्रेष्ठता के प्रदर्शन के रूप में हुई। डी.आर.डी.एल. और आर.सी.आई. के पाँच सौ से ज्यादा वैज्ञानिक इस युद्ध के बाद सामने आए मुद्दों पर चर्चा के लिए इकट्ठे हुए। मैंने सभी के सामने एक सवाल रखा—'क्या दूसरे देशों के समान तकनीकी ज्ञान विकसित करना या हथियार बनाना हमारे लिए संभव होगा—और यदि 'हाँ' तो हमें कैसे इसकी कोशिश करनी चाहिए?' इस विचार विमर्श में कई और गंभीर सवाल सामने आए—जैसे प्रभावशाली इलेक्ट्रॉनिक युद्ध प्रणाली कैसे विकसित की जाए? मिसाइल विकास एवं हलके लड़ाकू विमान जैसी जरूरी प्रणालियों के विकास को और आगे कैसे बढ़ाया जाए तथा ऐसे कौन-कौन से प्रमुख क्षेत्र हो सकते हैं जिनमें तेजी से काम किए जाने की जरूरत है।

तीन घंटे से ज्यादा चली इस जीवंत चर्चा में अंत में इस बात पर आम राय बनी कि विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी सेनाओं को भी उन्हीं क्षमताओं से युक्त किया जाए, जो क्षमताएँ शत्रु की सेना के पास हैं। वैज्ञानिकों ने साल के अंत तक 'पृथ्वी' की परिशुद्धता और बढ़ाने के लिए सी.ई.पी. कम करने, 'त्रिशूल' की के-बैंड निर्देशन प्रणाली को और उन्नत बनाने तथा 'अग्नि' के लिए सभी कार्बन-कार्बन रि-एंट्री कंट्रोल सरफेस को विकसित करने का प्रण किया। बाद में यह प्रण पूरा हुआ। इसी साल में ट्यूब-प्रक्षेपित 'नाग' की उड़ानें और समुद्र की सतह से सात मीटर की ऊँचाई पर 'त्रिशूल' का संचालन भी देखा, जिसकी गति ध्वनि की गति से तीन गुना ज्यादा थी।

इसी साल मुझे आई.आई.टी., बंबई से 'डॉक्टर ऑफ साइंस' की मानद उपाधि मिली। इस अवसर पर प्रो. बी. नाग द्वारा पढ़े गए प्रशस्ति पत्र में मुझे 'ठोस तकनीकी आधार खड़ा करने की प्रेरणा देनेवाला व्यक्ति' बताया गया, जिससे भारत इक्कीसवीं सदी में भविष्य के अंतरिक्ष कार्यक्रमों को मिलनेवाली चुनौतियों का पूरी तरह सामना कर सके। शायद प्रो. नाग सिर्फ विनम्रता में यह कह गए थे; लेकिन मेरा मानना है कि भारत इक्कीसवीं सदी में प्रवेश अपने उस उपग्रह के साथ करेगा, जो पृथ्वी से छत्तीस हजार किलोमीटर दूर अंतरिक्ष में अपने ही प्रक्षेपण यान से प्रतिस्थापित किया जाएगा। भारत एक मिसाइल शक्ति भी बन जाएगा। भारत एक जबरदस्त तेजस्विता से युक्त देश है। हालाँकि विश्व अभी इसकी पूरी क्षमता को नहीं देख रहा है और न ही इसकी पूर्ण शक्ति को महसूस कर रहा है; पर अब कोई भी इसकी और ज्यादा उपेक्षा नहीं कर सकेगा।

15 अक्तूबर को मैं साठ साल का हो गया था। मैंने सेवानिवृत्ति की सोची और गरीब, लेकिन प्रतिभावान् बच्चों के लिए एक अनोखा स्कूल खोलने की योजना बनाई। मेरे दोस्त प्रो. पी. रामाराव, जो उस समय विज्ञान व टेक्नोलॉजी विभाग में सचिव थे, भी इस काम में मेरे साथ भागीदार थे और हमने इसे राव-कलाम स्कूल नाम दिया था। हमारी इसमें स्पष्ट एक राय यह थी कि हम निश्चित मिशन लेकर चलेंगे और निश्चित लक्ष्यों तक पहुँचेंगे, चाहे वे महत्त्वपूर्ण हों, चाहे वे प्रभावित करनेवाले दिखें या नहीं। लेकिन हमें यह योजना रद्द करनी पड़ी; क्योंकि हममें से किसीको भी भारत सरकार ने रिटायर नहीं किया। इस दौरान कुछ निश्चित मामलों पर मैंने अपनी यादें सामने रखने और अपने विचार एवं राय रखने के लिए इस पुस्तक पर काम करने का फैसला भी किया।

भारती युवाओं को जिस सबसे बड़ी समस्या का सामना करना पड़ता है,

मेरा मानना है कि वह दृष्टि की स्पष्टता और निर्देशन की कमी है। यह बात तब ठीक से सामने आई जब मैंने उन परिस्थितियों व व्यक्तियों के बारे में लिखने का फैसला किया, जिन्होंने मुझे वह बनाया जो कि मैं आज हूँ। यह कुछ लोगों के प्रति सम्मान व्यक्त करने का विचार या अपने जीवन के कुछ निश्चित पहलुओं को घटा-बढ़ाकर दिखाने की बात नहीं थी। जो मैंने कहना चाहा वह यह है कि किसीको भी, चाहे गरीब हो या छोटा, जीवन के बारे में हताशा महसूस नहीं करनी चाहिए! समस्याएँ जीवन का हिस्सा हैं। दुःख-भोग ही सफलता का सत्त्व है। जैसा किसीने कहा है—

'ईश ने नहीं कहा कि दूँगा
सदा स्वच्छ नीला आकाश।
फूल भरी राहें जीवन भर
बिन बादल और बिन बरसात।
बिन दुःख के आनंद न होगा
और न शांति बिना प्रलाप।'

मैं यह कहने की धृष्टता नहीं करूँगा कि मेरा जीवन किसीके लिए एक आदर्श या मॉडल के रूप में हो सकता है। लेकिन अंधकारमय जगह पर रहनेवाले कुछ गरीब बच्चे, शोषित समाज में रह रहे बच्चे मेरे जीवन की बनी नियति से थोड़ी सी दिलासा जरूर ले सकते हैं। क्या यह उनको उनके बँधुआयत, पिछड़ेपन या निराशाजनक माहौल से उबारने में मदद कर पाएगी? वे जहाँ हों, उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि ईश्वर उनके साथ है और जब वह उनके साथ है तो उनका कोई क्या कर सकता है।

'ईश ने दी सदा पुरुष को
शक्ति जीवन के हरेक दिन
श्रांति हरेक श्रम के संग बाँधी
और रोशनी राहें चुन-चुन।'

मैं यह देखता रहा हूँ कि ज्यादातर भारतीय अपने जीवन में अनावश्यक रूप से पीड़ा-दुःखों को भोग रहे हैं, क्योंकि वे अपनी भावनाओं के साथ सामंजस्य बैठाना नहीं जानते। वे एक तरह के मनोवैज्ञानिक जड़त्व से ग्रस्त हैं। उन उत्पीड़नों के बारे में क्यों नहीं लिखा जाता, जो भारतीय विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी की दुःखांतिका का प्रमाण हैं? और किसी संगठन की सफलता के रास्तों के बारे में क्यों नहीं लिखा जाता? □

: सोलह :

टेक्नोलॉजी विज्ञान से भिन्न एक सामूहिक गतिविधि है। यह किसी एक व्यक्ति की बुद्धि या समझ पर आधारित नहीं होती बल्कि कई व्यक्तियों की आपसी बौद्धिक प्रतिभा पर आधारित होती है। मेरा मानना है कि आई.जी.एम.डी.पी. की सबसे बड़ी सफलता का तथ्य यह नहीं है कि देश ने रिकॉर्ड समय के भीतर पाँच मिसाइल प्रणालियाँ विकसित कर लेने की क्षमता हासिल कर ली, बल्कि तथ्य यह है कि इसके माध्यम से वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों की कुछ सर्वश्रेष्ठ टीमें तैयार हो गईं। अगर कोई मुझसे भारतीय रॉकेट विज्ञान में मेरी व्यक्तिगत उपलब्धि के बारे में पूछता है तो मैं बताऊँगा कि मैंने नौजवानों की टीमों के लिए एक ऐसा माहौल तैयार किया जिसमें वे अपने दिल और आत्मा को सहर्ष अपने मिशन में लगा सकें।

अपने निर्माण के दौर में टीमें बच्चों की तरह ही होती हैं। वे एकदम उत्तेजनशील, ओजस्विता, उत्साह एवं उत्सुकता से भरपूर और अपने को विशिष्ट दिखाने की इच्छा लिये होती हैं। हालाँकि बहकाए हुए अभिभावक अपने व्यवहार से इन बच्चों की सकारात्मक विशेषताओं, गुणों को नष्ट कर सकते हैं। टीमों की सफलता के लिए काम का माहौल ऐसा होना चाहिए जो कुछ नया करने का अवसर प्रदान करे। डी.टी.डी. एंड पी. (एयर), इसरो, डी.आर.डी.ओ. और दूसरी जगहों पर काम करने के दौरान मैंने ऐसी चुनौतियों का मुकाबला किया है; लेकिन अपनी टीमों को हमेशा ऐसा माहौल देना सुनिश्चित किया जिसमें वे कुछ नया कर सकें और जोखिम उठा सकें।

एस.एल.वी.-3 परियोजना और बाद में आई.जी.एम.डी.पी. के दौरान हमने पहले परियोजना टीमें बनानी शुरू कीं तो इन टीमों में काम कर रहे लोगों ने अपने को अपने संगठनों की महत्त्वाकांक्षाओं की अग्रिम पंक्ति में पाया। चूँकि इन टीमों में एक तरह से मनोवैज्ञानिक निवेश किया गया था, इसलिए वे बहुत ही सुस्पष्ट

और अति संवेदनशील बन गईं। सामूहिक यश लेने के लिए वे एक-दूसरे से व्यक्तिगत रूप से विषमानुपात में काम करने की उम्मीद करते।

मैं यह जानता था कि संगठन व्यवस्था में किसी भी तरह की असफलता टीम में किए गए निवेश को बेकार कर देगी। इन टीमों को औसत कार्य समूहों के जिम्मे कर दिया जाता और वहाँ भी ये असफल हो सकती थीं तथा मान्य शर्तों के तहत उनके लिए जो बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाएँ सँजोई गई थीं, वे पूरी नहीं हो पातीं। कई अवसरों पर तो संगठन अपनी शक्ति खो चुकने के किनारे पर था, अतः कई प्रतिबंध लगाने पड़े।

एस.एल.वी. परियोजना के शुरुआती वर्षों में मुझे शीर्ष स्तर पर प्रायः अधीरता का सामना करना पड़ा था, क्योंकि काम में प्रगति तत्काल नजर नहीं आ रही थी। कई लोगों का मानना था कि एस.एल.वी.-3 पर अब संगठन का नियंत्रण नहीं रह गया था, जिससे टीमें उच्छृंखल हो जाएँगी और अनुशासनहीनता फैलेगी तथा संगठन में अव्यवस्था मच जाएगी और संदेह पैदा होने लगेंगे। लेकिन सभी अवसरों पर ये आशंकाएँ काल्पनिक साबित हुईं। संगठनों में कई व्यक्ति बहुत ही मजबूत स्थिति में थे। उदाहरण के लिए, वी.एस.एस.सी. में, जिन्होंने टीमों को सौंपे गए सांगठनिक लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्धता एवं जिम्मेदारियों को हमेशा कम करके आँका, वे हमेशा गलत सिद्ध हुए।

जब आप एक परियोजना टीम के रूप में काम करते हैं तो आपको सफलता की कसौटी के लिए मिली-जुली दृष्टि विकसित करनी होगी। हर टीम के काम में हमेशा बहुविध और विरोधाभासी उम्मीदें बनी रहती हैं। अच्छी परियोजना टीमें उस मूल तत्त्व और उन मुख्य लोगों को फौरन पहचान लेने में समर्थ होती हैं, जिनसे सफलता की कसौटी तय कर ली जानी चाहिए। टीम के नेता की भूमिका का एक निर्णायक पक्ष ऐसे मुख्य लोगों से उनकी जरूरतों के बारे में बातचीत कर लेने तथा उनको प्रभावित करने का होता है और टीम नेता को यह भी सुनिश्चित करना होता है कि जैसे-जैसे परिस्थितियाँ विकसित हों या बदलें, तत्त्व पर नजर जमी रहे, मुख्य लोगों और अन्य लोगों के बीच संवाद नियमित रूप से जारी रहे।

एस.एल.वी.-3 टीम ने स्वयं ही आंतरिक सफलता की कसौटी विकसित की थी। स्वयं ही अपने स्पष्ट मानदंड, उम्मीदें और लक्ष्य निर्धारित किए थे। हमें सफलता हासिल करने के लिए क्या-क्या करने की जरूरत है और हम सफलता को कैसे आँकेंगे, ये भी हमने खुद ही तय किया था। उदाहरण के लिए, हम

अपने कार्यों को किस तरह पूरा करने जा रहे हैं, कौन क्या करेगा और किन मापदंडों के अनुसार करेगा, समय सीमाएँ क्या हैं और संगठन में टीम दूसरों के संदर्भ में खुद कैसे काम करेगी।

किसी भी टीम में सफलता की कसौटी तक पहुँचने की प्रक्रिया बहुत ही जटिल एवं कौशलयुक्त होती है; क्योंकि एक ही छत के नीचे काफी कुछ घटित होता है। जबकि साधारण तौर पर टीम बाहर से परियोजना के लक्ष्यों को हासिल करने के उद्देश्य से ही काम करती है। लेकिन मैंने बार-बार देखा है कि लोग यही तय नहीं कर पाते कि वे क्या करना चाहते हैं और फिर भी कार्यशाला में जब उनके सामने कोई काम होता है तो वे उसे करना नहीं चाहते। असल में एक परियोजना टीम के सदस्य को जासूस की तरह होना चाहिए। उसे यह देखते रहना चाहिए कि परियोजना का काम किस प्रकार आगे बढ़ रहा है और फिर परियोजना की जरूरतों के बारे में स्पष्ट, व्यापक और गहरी समझ बनाने के लिए विभिन्न सबूतों को एक साथ रखकर उनपर विचार करना चाहिए।

दूसरे स्तर पर परियोजना नेता को टीमों एवं कार्य केंद्रों के बीच संबंध को बढ़ावा देने तथा विकसित करने का काम करना चाहिए। दोनों ही पक्षों को अपनी आपसी समझ के बारे में बहुत ही स्पष्ट होना चाहिए और दोनों को ही परियोजना में बराबर का पूर्णरूप से साझेदार होना चाहिए। फिर भी दूसरे स्तर पर हरेक पक्ष को दूसरे पक्ष की अपेक्षाओं का आकलन करते रहना चाहिए और एक-दूसरे की शक्ति एवं कमजोरियों के बारे में जानते रहना चाहिए, ताकि यह तय किया जा सके कि क्या किए जाने की जरूरत है और इसे कैसे किया जाना चाहिए। दरअसल यह पूरा खेल ठेकेदारी की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। यह संभावनाएँ तलाशने और किसी समझौते पर पहुँचने को लेकर है, जिसमें एक पार्टी दूसरी से कुछ अपेक्षाएँ करती है। यह दूसरी पार्टी के दबावों की यथार्थवादी समझ के बारे में है, यह सफलता की कसौटी को बताने के बारे में और उन साधारण नियमों की व्याख्या करने के बारे में है जिसमें कार्य से संबंध स्थापित करने के बारे में बताया जाता है। लेकिन इन सबसे ऊपर यह तकनीकी एवं व्यक्तिगत स्तरों पर स्पष्ट संबंध विकसित करने को लेकर है। आई.जी.एम.डी.पी. में शिवथानु पिल्लै और उनकी टीम ने स्व विकसित तकनीक—पी.ए.सी.ई. यानी प्रोग्राम एनालिसिस कंट्रोल एंड इवेल्यूएशन के माध्यम से इस क्षेत्र में उल्लेखनीय काम करके दिखाया था। वह रोजाना बारह से एक बजे तक परियोजना टीम के सदस्यों तथा किसी एक कार्य केंद्र के साथ बैठने और उनके बीच सफलता का स्तर बनाने का काम करते।

सफ़लता कैसे हासिल की जाए और भविष्य की दृष्टि क्या हो, इसकी योजना ही सफलता के लिए प्रेरणा उत्पन्न करती है, जो कि मैंने खुद पाया है, और हमेशा चीजों को साकार बनाती है।

तकनीकी प्रबंधन की अवधारणा की जड़ें विकासात्मक प्रबंधन मॉडलों में निहित हैं, जो कि साठ के दशक के शुरू में सद्भाव एवं उत्पादनमुखी प्रबंधन ढाँचे के बीच विवाद से शुरू हुई थी। मुख्य रूप से दो तरह की प्रबंधन स्थितियाँ होती हैं, एक—प्राइमल, जिसमें आर्थिक कर्मचारी का मूल्य महती होता है और दूसरी—रेशनल, जिसमें संगठनात्मक कर्मचारी का मूल्य मुख्य होता है। प्रबंधन को लेकर मेरी जो अवधारणा है वह उस कर्मचारी के इर्द-गिर्द है, जो तकनीकी व्यक्ति है। जबकि प्राइमल मैनेजमेंट स्कूल व्यक्तियों को उनकी स्वतंत्रता के लिए मान्यता देता है; जबकि रेशनल मैनेजमेंट उन्हें उनकी निर्भरता के लिए अभिस्वीकृति देता है। मैं उन्हें उनकी अंतर्निर्भरता के रूप में लेकर चलता हूँ। जहाँ प्राइमल मैनेजर स्वतंत्र उद्यम लेकर चलते हैं वहीं रेशनल मैनेजर आपसी सहयोग से काम करता है—और मैं एक अंतर्निर्भर संयुक्त उद्यम लेकर चलता हूँ, सभी को साथ लेकर—नेटवर्क, संसाधनों, कार्यक्रम निर्धारण, मूल्य, लागत आदि सभी को।

अब्राहम मैसलो पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने स्व कार्यान्वयन के नए मनोविज्ञान को अवधारणा के स्तर पर बहस के लिए प्रस्तुत किया। यूरोप में रुडोल्फ स्टेनर और रेग रेवांस ने इस अवधारणा को व्यक्तिगत शिक्षा की प्रणाली तथा संगठनात्मक नवीनीकरण के रूप में विकसित किया। एंग्लो-जर्मन प्रबंध दार्शनिक फ्रिट्ज शुएशर ने बौद्ध अर्थशास्त्र की शुरुआत की। भारतीय उपमहाद्वीप में महात्मा गांधी ने ज़मीनी स्तर की टेक्नोलॉजी पर जोर दिया और ग्राहक को संपूर्ण व्यावसायिक गतिविधि के केंद्रबिंदु में रखा। जे.आर.डी. टाटा प्रगति की ओर ले जानेवाला बुनियादी ढाँचा लेकर आए। डॉ. होमी जहाँगीर भाभा और प्रो. विक्रम साराभाई ने परमाणु ऊर्जा पर आधारित उच्च टेक्नोलॉजी एवं अंतरिक्ष कार्यक्रमों की शुरुआत की और साथ ही संपूर्णता व प्रवाह के प्राकृतिक नियमों पर स्पष्ट जोर दिया। डॉ. भाभा एवं प्रो. साराभाई के विकासात्मक दर्शन को आगे बढ़ाते हुए डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने भारत में हरित क्रांति लाने के लिए एकता के एक और प्राकृतिक सिद्धांत पर काम किया। डॉ. वर्गीज कुरियन ने सहकारिता आंदोलन को सशक्त बनाकर डेयरी उद्योग में एक नई क्रांति ला दी। प्रो. सतीश धवन ने अंतरिक्ष शोध में मिशन प्रबंधन की अवधारणाओं को विकसित किया।

आई.जी.एम.डी.पी. में मैंने अंतरिक्ष शोध में डॉ. ब्रह्मप्रकाश द्वारा स्थापित

उच्च टेक्नोलॉजी को अनुकूल बनाते हुए प्रो. साराभाई की दृष्टि और प्रो. धवन के मिशन को शामिल करने की कोशिश की। भारतीय निर्देशित मिसाइल कार्यक्रम में अंतर्निहितता के प्राकृतिक नियम को भी जोड़ने की कोशिश की, जिससे टेक्नोलॉजी प्रबंधन की संपूर्ण स्वदेशी किस्में विकसित हो सकें।

तकनीकी प्रबंधन का वृक्ष तभी फैलता है जब सकल रूप में जरूरतों, नवीनीकरण, अंतर्निर्भरता और प्राकृतिक प्रवाह का स्व कार्यान्वयन होता है। विकास के प्रतिरूप ही विकास की प्रक्रिया के लक्षण होते हैं, जिनका मतलब यह होता है कि चीजें धीमे परिवर्तन और अचानक रूपांतरण के मिले-जुले रूप में चलती हैं। हर रूपांतरण या तो एक नई छलाँग को जन्म देता है जिससे सोच, ज्ञान अथवा क्षमता के एक और विकसित पटल का प्रादुर्भाव होता है या फिर पुराने किसी पटल पर जा गिरता है। अच्छा प्रबंध ऊपर उठने तथा पीछे गिरने की प्रक्रिया को इस प्रकार अनवरत जारी रखता है कि ऊपर उठने की आवृत्ति और उसका तात्त्विक आकार पीछे गिरने की अपरिहार्यता को सदा न सिर्फ सँभाले रहे बल्कि निरस्त भी करता चले।

पेड़ का तना एक आणविक ढाँचे की तरह होता है, जिसमें सभी क्रियाएँ रचनात्मक होती हैं, सभी नीतियाँ आदर्शी होती हैं और सभी फैसले समकलनात्मक होते हैं। इस पेड़ की शाखाएँ संसाधन, संपत्तियाँ, संचालन और उत्पाद होते हैं, जो कि तने द्वारा विकास की निरंतर प्रक्रिया से पोषित किए जाते हैं।

जब सन् 1983 में आई.जी.एम.डी.पी. को मंजूरी मिली थी तब हमारे पास पर्याप्त तकनीकी आधार नहीं था। बहुत थोड़े से विशेषज्ञ उपलब्ध थे; लेकिन विशेषज्ञ टेक्नोलॉजी इस्तेमाल कर पाने का सामर्थ्य भी नहीं था। कार्यक्रम के इस बहु परियोजना वातावरण ने एक चुनौती पेश की थी—एक साथ पाँच मिसाइल प्रणालियाँ विकसित करने की चुनौती। इसमें हमें संसाधनों की विवेचित भागीदारी, प्राथमिकताएँ स्थापित करने और प्रगतिशील मानव शक्ति को लगाने की जरूरत थी। आखिरकार आई.जी.एम.डी.पी. में अठहत्तर भागीदार थे। इनमें छत्तीस टेक्नोलॉजी केंद्र और सार्वजनिक क्षेत्र के इकतालीस से ज्यादा उत्पादन केंद्र, आयुध कारखाने, निजी कारखाने और व्यावसायिक संस्थान शामिल थे। इसके अलावा सरकार में एक अलग से नौकरशाही तंत्र था। कार्यक्रम के प्रबंधन में हमने अपनी विशिष्ट जरूरतों एवं क्षमताओं के लिए एक उपयुक्त मॉडल विकसित करने की कोशिश की थी। हमने उन विचारों को भी लिया जो दूसरी जगह सामने आए थे; लेकिन उनपर अमल अपनी सामर्थ्य को देखते हुए ही किया। इस तरह हमारे समुचित

प्रबंधन और सहकारिता उद्यम की कोशिशों ने उस प्रतिभा एवं क्षमता को प्रदर्शित करने में मदद की जो हमारी प्रयोगशालाओं, सरकारी संस्थानों तथा निजी उद्योगों में थी।

आई.जी.एम.डी.पी. का तकनीकी प्रबंधन दर्शन मिसाइल विकास के लिए ही विशेष नहीं है। यह सफलता एवं ज्ञान के उस राष्ट्रीय अनुरोध को प्रदर्शित करता है कि अब दुनिया फिर कभी भी बाहुबल या पैसे की ताकत से नहीं चलेगी। वास्तव में ये दोनों ही शक्तियों का प्रवाह टेक्नोलॉजी की विशिष्टता के कारण होता। सिर्फ टेक्नोलॉजी-संपन्न राष्ट्र ही स्वतंत्रता एवं संप्रभुता का आनंद लेंगे। टेक्नोलॉजी सिर्फ टेक्नोलॉजी का ही आदर करती है और जैसाकि मैंने शुरू में कहा है कि टेक्नोलॉजी विज्ञान से भिन्न एक सामूहिक गतिविधि है। यह किसी एक व्यक्ति की बुद्धि से नहीं बढ़ती बल्कि एक-दूसरे के पारस्परिक बौद्धिक संगम का परिणाम होती है—और यह वही है जो मैंने आई.जी.एम.डी.पी. में बनाने की कोशिश की; अठहत्तर भारतीय संस्थानों का एक ऐसा परिवार, जो मिसाइल प्रणालियाँ भी बनाता है।

हमारे वैज्ञानिकों के जीवन और सुख-दुःख को लेकर काफी अटकलें लगाई जाती रही हैं। लेकिन सही ढंग से यह पता लगाने की कोशिश नहीं की गई कि वे कहाँ जाना चाहते थे और यहाँ कैसे पहुँच गए। अपने जीवन के संघर्ष की कहानी बताते हुए मैंने अंदर कहीं-कहीं कुछ झलक देने की कोशिश की है। मुझे आशा है कि हमारे समाज में सत्तावाद के खिलाफ खड़े कुछ थोड़े से नौजवानों के समान ही यह होगी। इस सत्तावाद का एक प्रमुख लक्षण यह है कि यह लोगों को दौलत, सम्मान, प्रतिष्ठा, पदोन्नति, एक-दूसरे की जीवन-शैली से प्रभावित रहने, आयोजित सम्मान—सभी तरह के प्रतिष्ठा द्योतक जैसे अंतहीन रास्ते पर ले जाता है।

इन लक्ष्यों को आसानी से हासिल करने के लिए वे शिष्टाचार के नियमों को सीखते हैं और अपने आपको रीति-रिवाजों, परंपराओं, आचार संहिता और इसी तरह की दूसरी चीजों में ढालते हैं। आज के नौजवान को जीवन-शैली को स्व पराजय की ओर ले जानेवाले इन रास्तों से बचना चाहिए। भौतिकता अर्जित करने के लिए कार्य करने की संस्कृति और उससे मिलनेवाले प्रतिफल को अपने जीवन से अलग कर देना चाहिए। जब मैं अमीर, सत्ता-संपन्न, शिक्षित लोगों को अपने भीतर शांति के लिए तड़पते, छटपटाते, संघर्ष करते देखता हूँ तो अहमद जलालुद्दीन और अयादुरै सोलोमन जैसे लोग याद आते हैं। पास में कुछ भी नहीं होते हुए वे कितने खुश थे।

'कोरमंडल के तट पर
जहाँ के शंख नाद करते हैं,
रेत के कण प्रकाश भरते हैं।
रही हैं वहाँ कुछ शाही शख्सीयतें
जिनकी सल्तनत सागर-सी अपार थी
जिनकी संपदा रेत-सी अमोल थी।
एक सूती धोती थी,
एक आधी मोमबत्ती।
एक हत्था टूटा प्याला,
एक नीची दुछत्ती।'

बहुत सी चीजों पर निर्भर रहे बिना भी वे अपने को कितना सुरक्षित महसूस करते रहे होंगे। मेरा मानना है कि उन्होंने अपने भीतर से ही इसका संपोषण कर लिया होगा। वे अपने भीतरी संकेतों पर ज्यादा निर्भर रहे और बाहरी संकेतों पर बहुत ही कम, जिनका मैं ऊपर जिक्र कर चुका हूँ। क्या आप इन भीतरी संकेतों से परिचित हैं? क्या आपका इनपर विश्वास है? क्या आपके जीवन का नियंत्रण आपके अपने हाथों में है? इसे आप मुझसे लीजिए और बाहरी दबावों को दूर करने के लिए और फैसले लीजिए। इससे आपका जीवन अच्छा बनेगा और आपका समाज अच्छा होगा। अंतर्निर्देशित और मजबूत लोगों को अपना नेता बनाने से संपूर्ण राष्ट्र का हित होगा।

जीवन में आप अपने स्वयं के भीतरी संसाधनों के निवेश की इच्छा रखिए, खासकर अपनी कल्पना की। यही आपको निश्चित रूप से सफलता दिलाएगी। जब आप स्वयं अपनी इच्छा एवं जिम्मेदारी से कोई काम अपने हाथ में लेते हैं तो आप एक इनसान बन जाएँगे।

आप, मैं और प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर ने यहाँ अपनी-अपनी सृजनात्मक क्षमता से सबकुछ बनाने और स्वचेतन के साथ शांति से रहने के लिए भेजा है। हम अपने-अपने रास्ते अलग चुनते हैं और अपनी-अपनी नियति तय करते हैं। जीवन एक कठिनाइयों भरा खेल है। इसमें आप सिर्फ तभी जीत सकते हैं जब आप एक व्यक्ति होने का जन्मसिद्ध अधिकार हासिल कर लें। इसे प्राप्त करने के लिए आपको सामाजिक या बाहरी खतरे उठाने को तैयार रहना होगा। सुब्रह्मण्य अय्यर द्वारा मुझे अपनी रसोई में भोजन के लिए आमंत्रित करने को आप क्या कहेंगे? मुझे इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ाने के लिए मेरी बहन जोहरा ने अपनी सोने की चूड़ियाँ

व हार गिरवी रखा था, इसे आप क्या कहेंगे? प्रो. स्पांडर इसपर जोर देते रहे कि मुझे उनके साथ आगे की पंक्ति में बैठकर फोटो खिंचवाना होगा, इसे क्या कहा जाए? क्या मोटर गैराज में हॉवरक्राफ्ट का निर्माण नहीं हुआ था? सुधाकर का साहस, डॉ. ब्रह्मप्रकाश का सहयोग, नारायणन का प्रबंधन, वेंकटरामन की दृष्टि, अरुणाचलम की गतिशीलता—हरेक व्यक्ति अपने भीतर की शक्ति एवं प्रेरणा का उदाहरण है।

मैं कोई दार्शनिक नहीं हूँ। मैं तो सिर्फ टेक्नोलॉजी का एक व्यक्ति हूँ। मैंने अपना सारा जीवन रॉकेट विज्ञान को सीखने में लगाया है। लेकिन मैंने विभिन्न संगठनों में बहुत सारे भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के साथ काम किया है। इसी जटिलता में मुझे व्यावसायिक जीवन की घटनाओं को समझने का अवसर मिला। अब जब मैं पीछे की ओर देखता हूँ, जो कि अब तक मैंने बताया है, तो मुझे लगता है कि यह सब मेरे स्वयं के विचार-प्रेक्षणों एवं निष्कर्षों से ज्यादा कुछ नहीं है। मेरे सहकर्मी, साथी, नेता, नाटक का असली पात्र मैं खुद, रॉकेट का जटिल विज्ञान, तकनीकी प्रबंधन के महत्त्वपूर्ण मसले आदि सभी आरेखी रूप में नजर आते हैं। पीड़ा एवं खुशी, उपलब्धियाँ और असफलताएँ—जो संदर्भ, समय व काल में भिन्न-भिन्न हैं—सब एक साथ नजर आती हैं।

जब आप हवाई जहाज से नीचे देखते हैं तो लोग, मकान, चट्टानें, खेत, पेड़—सभी एक में गड्ड-मड्ड नजर आते हैं और इनमें फर्क कर पाना बहुत ही मुश्किल होता है।

'मेरे भ्रम, मेरा मूल्य
तेरी महानता, मेरा रश्क।
मेरी कुव्वत से परे कितना तू?
मुझमें तेरा ही तो अक्स!'

यह कहानी पहले 'अग्नि' प्रक्षेपण तक की ही है। तब से अब तक और बहुत कुछ हुआ है, हो रहा है, होता रहेगा। जीवन चलता रहेगा। अगर हम सौ करोड़ लोगों की संयुक्त क्षमता के रूप में सोचें तो यह महान् देश हर क्षेत्र में महान् उपलब्धियाँ हासिल करेगा। मेरी कहानी जैनुलाबदीन के बेटे की कहानी है, जो रामेश्वरम् की मसजिदवाली गली में सौ साल से ज्यादा तक रहे और वहीं अपना शरीर छोड़ा। यह उस किशोर की कहानी है, जिसने अपने भाई की मदद के लिए अखबार बेचे। यह कहानी शिव सुब्रह्मण्य अय्यर एवं अयादुरै सोलोमन के शिष्य की कहानी है। यह उस छात्र की कहानी है जिसे पनदलाई जैसे शिक्षकों ने पढ़ाया।

यह उस इंजीनियर की कहानी है जिसे एम.जी.के. मेनन ने उठाया और प्रो. साराभाई जैसी हस्ती ने तैयार किया; और एक ऐसे कार्यदल नेता की कहानी, जिसे बड़ी संख्या में विलक्षण व समर्पित वैज्ञानिकों का समर्थन मिलता रहा। यह छोटी सी एक कहानी मेरे जीवन के साथ ही खत्म हो जाएगी। मेरे पास न धन, न संपत्ति, न मैंने कुछ इकट्ठा किया, कुछ नहीं बनाया है, जो ऐतिहासिक हो, शानदार हो, आलीशान हो। पास में भी कुछ नहीं रखा है—कोई परिवार नहीं, बेटा-बेटी नहीं।

'मैं इस महान् पुण्यभूमि में
खोदा गया एक कुआँ।
देखूँ अगिनत बच्चे
खींचते पानी, मुझमें जो भरा—
कृपा की उस परवरदिगार का।
और सींचते फूल, पौधे, फसलें
नया दौर
नई नस्लें
दूर-दूर तक नियामत
मेरे खुदा की।'

मैं नहीं चाहता कि मैं दूसरों के लिए कोई उदाहरण बनूँ। लेकिन मुझे विश्वास है कि कुछ लोग मेरी इस कहानी से प्रेरणा जरूर ले सकते हैं और जीवन में संतुलन लाकर वह संतोष प्राप्त कर सकते हैं, जो सिर्फ आत्मा के जीवन में ही पाया जा सकता है। मेरे परदादा अवुल, मेरे दादा पकीर और मेरे पिता जैनुलाबदीन की पीढ़ी अब्दुल कलाम के साथ खत्म होती है; लेकिन उस सार्वभौम ईश्वर की कृपा इस पुण्यभूमि पर कभी खत्म नहीं होगी, क्योंकि वह तो शाश्वत है।

□

उपसंहार

यह पुस्तक भारत के पहले उपग्रह प्रक्षेपण यान एस.एल.वी.-3 और 'अग्नि' के कार्यक्रम से मेरे गहरे जुड़ाव से अंतर्ग्रथित है और संयोग से इसी जुड़ाव ने हाल की महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय घटना यानी मई 1998 में किए गए पोखरण परमाणु परीक्षण में मेरी भागीदारी बनाई। तीन बड़े वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों—अंतरिक्ष, रक्षा शोध एवं परमाणु ऊर्जा—में मुझे काम करने का महान् अवसर मिला है। इन प्रतिष्ठानों में काम करते हुए मैंने पाया कि श्रेष्ठ इनसान और विलक्षण प्रतिभा के लोगों की कमी नहीं है। इन तीनों प्रतिष्ठानों में एक जो खास बात है वह यह कि अपने मिशनों में काम के दौरान इन वैज्ञानिकों एवं तकनीकीविदों को असफलता का डर कभी भी नहीं लगा। असफलता के साथ उनके भीतर सफलता के बीज भी रहे हैं, जिनसे और ज्यादा सीखने की प्रेरणा मिलती है। इसीसे कहीं बेहतर टेक्नोलॉजी सामने आई है और संयोग से उच्च सफलता भी मिली है।

ये लोग महान् स्वप्नद्रष्टा भी थे और अंततः इनके सपने बड़ी उपलब्धियों के रूप में साकार हुए हैं। मुझे लगता है कि अगर हम इन सभी वैज्ञानिक संस्थानों की तकनीकी क्षमता का मिलाकर इस्तेमाल करें तो निश्चित रूप से हम विकसित राष्ट्रों की तकनीकी उपलब्धियों से इसकी तुलना कर सकेंगे। मुझे राष्ट्र की महान् स्वप्नदर्शी हस्तियों जैसे प्रो. विक्रम साराभाई, प्रो. सतीश धवन और डॉ. ब्रह्मप्रकाश के सान्निध्य में काम करने का भी मौका मिला, जिन्होंने मेरे जीवन को समृद्ध बनाया।

एक राष्ट्र को आगे बढ़ने और विकास के लिए आर्थिक खुशहाली तथा मजबूत सुरक्षा दोनों की जरूरत होती है। हमारा 'रक्षा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता मिशन 1995-2005' सशस्त्र सेनाओं को प्रतियोगी हथियार प्रणाली उपलब्ध कराएगा। 'टेक्नोलॉजी विजन-2020' योजना में राष्ट्र के आर्थिक विकास एवं खुशहाली के लिए ठोस योजनाएँ रखी जाएँगी। इन दोनों योजनाओं में हमारे राष्ट्र के सपने हैं। मैं

पूरे उत्साह से उम्मीद और प्रार्थना करता हूँ कि इन दो योजनाओं—'आत्मनिर्भरता मिशन' एवं 'टेक्नोलॉजी विजन-2020' से होनेवाले विकास से अंततोगत्वा हमारा राष्ट्र-एक मजबूत, खुशहाल तथा 'विकसित' राष्ट्र जरूर बनेगा।

□□□